## श्री विश्वनाथो विजयतेतराम् ।

वेदे वेदाङ्गराशौ स्मृतिवरनिचये दर्शने चेतिहासे ।
व्यासोक्ते सत्पुराणे सुकृतिकृतिचये सर्वराद्धान्तसिन्धौ ॥
स्नाता धीर्यस्य सारग्रहणपरवशा शुद्धसत्त्वाभिरामा ।
सोऽयं राराजत श्रीयतिवरतिलको मण्डलेशो महेशः ॥१॥

काशीहरिद्वारनिवासी ब्रह्मनिष्ठ-श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-
दार्शनिक सार्वभौम विद्यावरिधि-न्यायमार्तण्ड-वेदान्तवागीश
**श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज महामण्डलेश्वर**
ठि. खा० सुरतगिरिजी महाराजका बंगला कनखल
(हरिद्वार) जि० सहारनपुर यू. पी.

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

श्री विश्वनाथो विजयतेतराम् ।

# गायत्री-मीमांसा—

( शुक्लयजुर्वेद-संहितोपनिषच्छतकस्य द्विषष्ठिमन्त्रस्याध्यात्मज्योत्स्नाविवृतिलक्षणव्याख्यानरूपा-हिन्दी अनुवाद सहिता )

गायत्रीमन्त्रस्य प्रतिपादनम् ।

यथा च मधु पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः ।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सारमुच्यते ॥

सर्ववेदसारभूतं ब्रह्मात्मैक्यादितात्त्विकार्थबोधकं सकलेष्टार्थसाधकमनादिशिष्टपरम्परोपासितमखिलपापतापप्रणाशकारकं द्विजानां छन्दसाञ्च मातृभूतं समस्तहृदयाम्भोजनिलयब्रह्मचैतन्यनिलयं गायत्रीमन्त्रमाह—

गायत्री—मन्त्रका प्रतिपादन प्रारम्भ किया जाता है। गायत्री चारों वेदों का सार है। जैसे पुष्पों का सार मधु, दूधका सार घृत और रसका सार दूध है, उसी प्रकार वेदों का सार गायत्री है। वह जीव ब्रह्मकी वास्तविक—एकता आदि रहस्यों का बोधन

करती है, सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध कर देती है, अनादि कालसे व्यास–वशिष्ठादि–शिष्ट पुरुषों द्वारा गायत्रीकी उपासना चली आ रही है। सब प्रकारके पाप और संतापों को नाश कर देती है, वह ब्राह्मणादि–द्विजों की और वेदोंकी जननी–माता है, हृदय कमल–स्थित ब्रह्म चैतन्यकी आवास भूमि है, उस गायत्री मन्त्रका प्रतिपादन करते हैं—

**ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।**
**धियो यो नः प्रचोदयात्॥**

( शु. य. ३। ३५ + २२। ९ + ३०। २ + ३६ ।३। ऋ. ३। ६२। १०। तै. सं. १। ५। ६। ४ + ४। १। ।११। १। तै. आ. १। ११। १। अथर्व. ३। १०। २। साम. १३। ४७। ६ )

हम उस परमात्मदेवके वरणीय ( चाहने योग्य ) भर्ग ( चैतन्य–ज्योतिः ) का ध्यान करते हैं, जो परमात्मा समस्त विश्वके प्रसव आदिके कर्ता हैं, इसीसे उन्हें सविता कहते हैं, एवं जो सर्वत्र सदा स्वयं प्रकाशमान हैं, इसीसे उन्हें देव कहते हैं, वह भर्ग हमारी बुद्धि वृत्तियों को धर्म–अर्थ–काम एवं मोक्षरूप चतुर्विध–पुरुषार्थोंकी सिद्धिकी ओर प्रेरित करे।'

तत्=सर्वलोकशास्त्रप्रसिद्धमत्युत्कृष्टं–प्रत्यग्भूतं–स्वतःसिद्धं –परं ब्रह्म इत्यर्थः। 'तत्त्वमसि' इति श्रुतेः। 'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' ( गी. १७। २३। ) इति स्मृतेश्च तच्छब्दस्य ब्रह्मवाचकत्वात्।

सर्व लोक और सम्पूर्ण-शास्त्रोंमें प्रसिद्ध, सर्वोत्कृष्ट-प्रत्यग्भूत-स्वतःसिद्ध-परब्रह्म-आत्मा, यह 'तत्' शब्दका अर्थ है। 'तत्त्वमसि' इस श्रुति-घटित 'तत्' शब्द इसमें प्रमाण है। और गीता के १७ वें अध्याय का २३ वां श्लोक भी स्मृतिरूपसे इसमें प्रमाण है; 'ॐ-तत्-सत्' ये तीनों शब्द ब्रह्मके बोधक मन्त्र हैं, यहां 'तत्' शब्द ब्रह्मका वाचक-नाम है।

**सवितुः = सृष्टिस्थितिलयलक्षणनामरूपात्मकसमस्तद्वैतप्रपञ्चविभ्रमाधिष्ठानस्येत्यर्थः। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति।' (तै. उ. भृ. व. ४ । १) इति श्रुतेः। वरेण्यं=सर्वैं मुमुक्षुभि र्वरणीयं=प्रार्थनीयं-सम्भजनीयं, निरतीशयाखण्डानन्दरूपत्वमन्तरेण तस्य सर्ववरणीयत्वानुपपत्तेः तद्रूपत्वमवधेयम्।**

सविताका अर्थ है—सृष्टि-स्थिति लयरूप लक्षणवाला—जो यह निखिल नाम रूपात्मक-द्वैत प्रपञ्चरूप विभ्रम है, उसका अधिष्ठान (आश्रय)। जिससे ये आकाशादि भूत उत्पन्न होते हैं, जिसकी सत्तासे उत्पन्न हुए भूत जीते (अवस्थित) रहते हैं, और जिसमें ये सब भूतवर्ग म्रियमाण होकर प्रविष्ट हो जाते हैं। वही जगत्की उत्पत्तिका स्थितिका और प्रलयका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है, उसको ही तू जाननेकी इच्छा कर, वही ब्रह्म है।' यह तैत्तिरीय श्रुति भी इसमें प्रमाण है। वरेण्यका अर्थ है—समस्त-मुमुक्षु जनों द्वारा वह वरणीय अर्थात् प्रार्थना करने योग्य, अथवा निरतिशय

–अखण्ड–आनन्द स्वरूप वह ब्रह्म संभजनीय–अर्थात् अभेद–अध्यवसाय द्वारा भजन करनेयोग्य। यदि वह निरतिशय–आनन्दस्वरूप न होता, तो सबका ईप्सिततम ( तीव्रतम–इच्छाका विषय ) नहीं हो सकता, इसलिए ईप्सिततम होनेके कारण निरतिशय–अखण्ड–आनन्द रूप ही है।

**भर्गः=अविद्यादिसकलदोषभर्जनात्मकश्रौतज्ञानैकगम्यं यन्निरुपद्रवं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं परमार्थविज्ञानस्वरूपं परिपूर्णस्वयंज्योतिरूपं चैतन्यं तेज इत्यर्थः। 'एतद्ब्रह्मैतदमृतमेतद्भर्गः' ( मैत्र्युप. ६। ३५ ) इति श्रुतेः। 'तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतम्।' इति स्मृतेश्च। देवस्य= सर्वद्योतनात्मकाखण्डचिदेकरसस्येत्यर्थः। सवितुर्देवस्येत्यत्र षष्ठ्यर्थो–'राहोः शिरोवत्' 'पुरुषस्य चैतन्यवद्वा' औपचारिकः अभेदार्थलक्षकोऽवसेयः।**

भर्गका अर्थ है–अविद्यादि समस्त दोषोंका भर्जन करनेवाला–जो श्रौतज्ञान ( श्रुति–जन्यज्ञान ) है, उसकेद्वारा जो जाननेयोग्य है, वह। वही निरुपद्रव–नित्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्त स्वभाव–परमार्थ विज्ञानस्वरूप–परिपूर्ण स्वयं–ज्योतिरूप चैतन्य–तेज है, वह भर्गपदका वास्तविक अर्थ है। मैत्रेयी श्रुति कहती है–'वह ब्रह्म अमृत एवं भर्ग ज्योति चैतन्य है।' स्मृति भी कहती है–'वह परब्रह्म ज्योति भर्ग है, क्योंकि–भर्ग तेजरूप माना गया है।' इस श्रुति एवं स्मृतिके प्रमाणसे भी इस–अर्थ की पुष्टि होरही है। अतः यह अर्थ अत्युत्तम–प्रामाणिक है। सर्व–द्योतनात्मक–अखण्ड–चिदेक-

रस ब्रह्म देवका अर्थ है। 'सवितुर्देवस्य भर्गः,' इस षष्ठी विभक्तिके पदका औपचारिक—(काल्पनिक—अमुख्य) भेद, एवं वास्तविक—अभेद अर्थ है। जैसे 'राहुका शिर' यहां पर राहु और शिर वस्तुतः दो-जुदे नहीं है, शिर ही राहु है, राहुसे शिर कुछ पृथक् नहीं है, इसी प्रकार 'पुरुषका चैतन्य' यहां भी जो पुरुष है, वही चैतन्य है, दोनोंका अभेद है। इस लिए यहां पर षष्ठी—विभक्तिका भेदवाला अर्थ गौण है, एवं लक्षित—अभेदार्थ मुख्य है, तद्वत् 'सविता—देवका भर्ग' में भी जो सविता देव है, वही भर्ग है। ऐसी लक्षित—अभेदार्थक षष्ठी विभक्ति समझनी चाहिए।

ननु-तद् ब्रह्म न प्रत्यगात्मलक्षणं प्रत्युत तद्विलक्षणमेव कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यनाश्रयत्वादित्याशङ्क्य तस्य प्रत्यग्विलक्षणत्वमेवासिद्धमित्याह—यः=यत् सत्यज्ञानादिलक्षणं ब्रह्म, लिङ्गव्यत्ययः पुंस्त्वनिर्देशश्छान्दसः। नः=अस्माकं-अस्मदीया वा धियः=बुद्धीः—अन्तःकरणस्य सर्वाः वृत्तीरित्यर्थः। प्रचोदयात्=प्रेरयेत्—प्रेरयति—प्रकाशयति इत्यर्थः। लकारव्यत्ययः। बिम्बस्थानीयं ब्रह्मैव सकलान्तःकरणवृत्तिसाक्षिलक्षणं सर्वबुद्धिप्रेरकं प्रत्यगात्मभूतमिति यावद्। तथा च प्रचोदयाच्छब्दनिर्दिष्टस्य प्रत्यगात्मनः स्वस्वरूपभूतस्य परब्रह्मणः तत्सवितुरित्यादिपदैः पूर्वं निर्दिष्टत्वेन प्रत्यग्लक्षणमेव ब्रह्मावगतं भवति, न ततो विलक्षणमिति भावः।

यहां पर यह आशंका होती है कि—वह ब्रह्म प्रत्यगात्मस्वरूप नहीं है, किन्तु उससे विलक्षण है। क्योंकि—वह ब्रह्म कर्तृत्व

भोक्तृत्व आदि संसार धर्मोंका आश्रय नहीं है, परन्तु प्रत्यगात्मा तो कर्तृत्वादि धर्मवान् प्रतीत होता है, इस लिए इन दोनों में विलक्षणता है, एकता नहीं है।

इस शंका का निराकरण किया जाता है कि—उस ब्रह्ममें प्रत्यगात्मासे विलक्षणता की असिद्धि हैं, यही कहते है—जो सत्य—ज्ञान—आदि लक्षणवाला ब्रह्म है, वही हमारे—अन्तःकरणकी समस्त वृत्तियों का प्रेरक प्रत्यगात्मा है। मन्त्रमें 'यः' ऐसा पुल्लिङ्ग प्रयोग है, उस को 'यत्' ऐसा नपुंसकलिङ्गरूप समझना चाहिए। वह प्रत्यगात्मरूप ब्रह्म, हमलोगों की या हमारी अन्तःकरणस्थित सब वृत्तियोंको अथवा बुद्धियोंको प्रेरणा करे, अर्थात् लकार एवं कालका व्यत्यय करके—प्रेरणा करता है, या प्रकाशित करता है। बिम्ब—स्थानीय ब्रह्म ही सबकी अन्तःकरण वृत्तियोंका साक्षी है, वही सब बुद्धियोंका प्रेरक प्रत्यगात्मस्वरूप है। यह भाव है। इस प्रकार 'प्रचोदयात्' पदसे निर्दिष्ट—प्रत्यगात्माका स्वस्वरूपभूत—परब्रह्म ही 'तत्सवितुः' इत्यादि पदोंके द्वारा प्रतिपादित होनेके कारण प्रत्यगात्म स्वरूप ही वह ब्रह्म है, ऐसा जाना जाता है। प्रत्यगात्मा से विलक्षण ब्रह्म नहीं जाना जाता है।

**तदेव तत्त्वं वयं सदा धीमहि=ध्यायेम-चिन्तयामः—बुद्ध्यादिसर्वदृश्यसत्तास्फूर्तिप्रदं तत्साक्षिलक्षणं यदस्माकं स्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्दं निरस्तसमस्तानर्थरूपं स्वप्रकाशचिदात्मकं परं ब्रह्मास्ति, तदेव वयं श्रद्धाभक्तिभ्यां 'तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहमि' त्येवमनवरतं विभावयाम इति यावत्।**

उसी ही अभिन्न–तत्त्वका हम सदा ध्यान अर्थात् चिन्तन करते हैं। वही ब्रह्म बुद्ध्यादिनिखिल–दृश्यको सत्ता–स्फूर्ति देता है, वही साक्षिरूप ब्रह्म–हमारा स्वरूप है। वही सर्वका अधिष्ठान–परमानन्दरूप –समस्त अनर्थों से वर्जित है, एवं स्वयं–प्रकाश चिदात्मरूप है। उसी की ही हम–' जो वह है, सो मैं हूं, जो मैं हूं, सो वही है, ऐसी श्रद्धा–भक्तिपूर्वक अनवरत भावना करते हैं।

तथा चायं गायत्रीमन्त्रः 'रज्जुसर्पन्यायेन' ब्रह्म-विवर्ताकाशादिजडप्रपञ्चस्य तदधिष्ठानेन ब्रह्मणा साकं बाध-सामानाधिकरण्यलक्षणमेकत्वं, 'सोऽयमिति' न्यायेन च बुद्धि-वृत्तिद्रष्टुः प्रत्यगात्मनो ब्रह्मणा सह तादात्म्यलक्षणमेकत्वञ्च स्फुटं प्रतिपादयन् चराचरविश्वाभिन्नमखण्डैकरसं परिपूर्णं सर्वात्मकं ब्रह्मतत्त्वं बोधयति। यत्रैतदाम्नातं भवति– 'एकत्वमनुपश्यतः' (ई. उ. ७) 'एकधैवानुद्रष्टव्यम्' (बृ. ४। ४। २०) इति

इस प्रकार यह गायत्री मन्त्र–रज्जुसर्प न्यायसे, आकाशादि –जड प्रपञ्च जो ब्रह्मका विवर्त है, उसका अधिष्ठान–ब्रह्मके साथ बाध–सामानाधिकरण्यरूप–एकत्वका, तथा 'सोऽयं' इस न्याय से बुद्धि–वृत्तियोंका द्रष्टा–प्रत्यगात्मा का ब्रह्मके साथ तादात्म्यरूप–एक-त्वका स्पष्ट प्रतिपादन करता हुआ, चराचर विश्वसे अभिन्न–अखण्ड–एकरस–परिपूर्ण–सर्वात्मारूप–ब्रह्मतत्त्वका बोधन करता है। इस विषयमें यह श्रुति भी कहती है–' एकत्व को देखनेवाला शोक–मोहसे रहित हो जाता है।' 'एकरूपसे ब्रह्मको देखना चाहिए।' इति

एवं सतीयं सर्ववेदसारभूता प्रत्यगुब्रह्मैक्यबोधिका परमात्मनः सर्वावभासकत्व–अप्राकृततेजोमयत्व–परमानन्दघन-त्व–सर्वदेवमयत्व–सर्वात्मत्वादिद्योतिका प्रणवव्याहृतिशिरः-समेता शुद्धा गायत्री तदर्थानुसन्धानपुरःसरा चतुर्थाश्रमिभि-र्ब्रह्मनिष्ठैर्यतिभिरपि प्राणायामजपादिभिरुपास्या । तथा च स्मर्यते–'गृहस्थो ब्रह्मचारी च शतमष्टोत्तरं जपेत् । वानप्रस्थो यतिश्चैव सहस्रादधिकं जपेत् ॥' इति । 'सर्ववेदान्तसिद्धान्तम-वलम्ब्य प्रकाशितः । गायत्रीनिगमार्थोऽयं मयाऽऽचार्यप्रसा-दतः ॥' इति ।

उक्त निदर्शनसे यह गायत्री सर्व वेदोंकी सारभूता, प्रत्य-गात्मा एवं ब्रह्मके एकत्व की बोधिका है, तथा परमात्माके सर्वावभास-कत्व, अप्राकृत ( अलौकिक ) ज्योतिर्मयत्व, परमानन्दघनत्व, सर्वदेव-मयत्व, एवं सर्वात्मत्वादि, दिव्य–गुणों को द्योतन करती है। वह ॐकार, व्याहृति तथा शिरःसंयुक्ता शुद्धस्वरूपा गायत्री अर्थानुसं-धानपूर्वक–चतुर्थाश्रमी–ब्रह्मनिष्ठ–संन्यासियोंको भी प्राणायाम–जपादिके द्वारा उपासना करने योग्य है। इस प्रकार स्मृतिमें भी कहा है–'गृहस्थ तथा ब्रह्मचारी गायत्री नियमतः १०८ वार जपे। वानप्रस्थ तथा संन्यासी हजारसे भी अधिक जपे।' इति। समग्र–वेदान्त–सिद्धान्तोंका अवलम्बन लेकर इस गायत्री–मन्त्रका वेदार्थ, मैंने पूज्य आचार्यों की अनुकम्पासे यथार्थतः प्रकाशित किया है। इति।

अथ प्रणवाद्यर्थनिरूपणम्–प्रणवो हि 'ॐकारः' सर्वमाप्नोति–व्याप्नोतीति । अवति–रक्षति स्वजपनिष्ठान्

संसारसागरादिति 'आप्लृ व्याप्तौ' 'अव रक्षणे' चेति द्वाभ्यां धातुभ्यां निष्पन्नमिदं 'ॐ' रूपम् । 'प्र-णु-स्तुतौ' प्रकर्षेण नूयते-स्तूयते आत्मा स्वेष्टदेवता वाऽनेनेति प्रणवः। 'ओमिति ब्रह्म' (तै० उ० १, ८) (गो० ब्रा० पूर्वभागे० १ । १६) 'परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारः' (प्रश्न. ५ । २) 'ओङ्कार एवेदꣳ सर्वम्' (छां० २।२३ । ३) 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥' (गीता. ८ । १३) 'ओङ्कारस्तु परं ब्रह्म गायत्री स्यात्तदक्षरम् । एवं मन्त्रो महायोगः साक्षात्सार उदाहृतः ॥' (औशनसस्मृति ३ । ५२)

अब प्रणव आदिके अर्थोंका निरूपण किया जाता है ।

'ॐ' को प्रणव कहते हैं, इसका अर्थ—जो सर्वत्र व्यापक है, या अपने जपनेवालों को संसार सागरसे बचाता है, अर्थात् रक्षा करता है। 'आप्लृ व्याप्तौ' 'अव रक्षणे' इन दो धातुओं से ॐ शब्द बनता है। अथवा प्र=प्रकर्षेण अर्थात् विशेष रूपसे जो आत्मा एवं निज-इष्ट-देवताकी स्तुति करता है, वह 'प्रणव' मन्त्र है। प्र उपसर्ग एवं 'णु स्तुतौ' धातुसे यहां प्रणव शब्द बनता है । 'ॐ यह ब्रह्म है'—अर्थात् ॐ यह अक्षर ब्रह्मका वाचक है, इस तैत्तिरीय श्रुति से तथा गोपथ ब्राह्मण से भी सूचित होता है । 'जो पर एवं अपर ब्रह्म है, वह ॐकार ही है' यह चराचर विश्व सब ॐकार ही है' यह प्रश्नोपनिषत् तथा छांदोग्य श्रुति भी प्रमाण है । भगवान् ने गीतामें भी यही उपदेश दिया है—'ॐ इस मन्त्रका उच्चारण करता

हुआ, तथा मेरा स्मरण करता हुआ जो पुरुष इस शरीर का त्याग करता है, वह परम गति--मोक्षको प्राप्त होता है।' 'ॐकार परब्रह्म है, गायत्री ॐकार स्वरूप है, इस प्रकार यह प्रणव महायोगरूप सर्वोत्कृष्ट मन्त्र है। तथा समस्त शास्त्रोंका साक्षात् साररूप कहा गया है।' यह औशनसस्मृति है।

'सारभूताश्च वेदानां गुह्योपनिषदः स्मृताः। ताभ्यस्सारन्तु गायत्री गायत्र्या व्याहृतित्रयम्॥ व्याहृतिभ्यस्तथोङ्कारस्त्रिवृद् ब्रह्म स उच्यते। त्रिवृद्ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥' (बृ. यो. याज्ञ. स्मृ ४। ७८। ७९) 'ओङ्कारः परमं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः। प्रजापतेर्मुखोत्पन्नस्तपःसिद्धस्य वै पुरा॥' (गो० या० स्मृ० २।३) 'प्रणवाद्याः स्मृताः मन्त्राश्चतुर्वर्गफलप्रदाः। तस्माच्च निःसृताः सर्वे प्रलीयन्ते च तत्र वै॥ यथा पर्ण पलाशस्य शङ्कुनैकेन धार्यते। तथा जगदिदं सर्वमोङ्कारेणैव धार्यते॥ प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्री छन्द एव हि॥ देवोऽग्निर्व्याहृतिषु च विनियोगः प्रकीर्तितः॥' इत्यादि। 'ओङ्कारं प्रणवश्चैव सर्वव्यापिनमेव च। अनन्तं च तथा तारं शुक्लं वैद्युतमेव च॥ हंसं तुर्यं परब्रह्म इति नामानि जानत॥ (बृ० यो० या० अ० २। ११६×११७)

'समस्त-वेदों के साररूपसे गुह्य--रहस्यमयी उपनिषदें (वेदान्त) कही गयी हैं। उन--उपनिषदों का साररूप गायत्री है। और गायत्रीका साररूप 'भूर्भुवः स्वः' ये तीन व्याहृतियां हैं,

इन–तीनों व्याहृतियों का सारतत्त्व ॐकार है। इसको अकार–उकार–मकाररूप त्रिवृत्–ब्रह्म कहा जाता है। इस त्रिवृत्–ब्रह्मरूप ॐकारमें निष्णात व्यक्ति परब्रह्म भावको प्राप्त हो जाता है।'

'ॐ यह सम्पूर्ण–मन्त्रोंका नायक ( प्रधान ) है, यही परब्रह्म है। तपश्चर्या से सिद्धि प्राप्त करके ब्रह्माने अपने मुखसे सर्वतः प्रथम इस 'ॐ, मन्त्रका उच्चारण किया था' यह-बृहत् योगी याज्ञवल्क्य की स्मृति है। 'प्रणव ही समस्त-अन्यान्य मन्त्रों का आदिम मन्त्र है, अत एव सभी मन्त्रों के आदिमें ॐकार होना चाहिए, तभी ही वे सब मन्त्र धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्षरूप फल प्रदान करने में समर्थ होते हैं, क्योंकि-प्रणवसे ही इन मन्त्रों की उत्पत्ति और उसीमें ही इन सब का लय होता है।' 'जैसे पलाश का पर्ण, ( पत्ता ) उसके अन्तर्वर्ति-सूक्ष्म-रेखाजालरूप-एकमात्र-शंकु ( टीवी ) से विधारित होता है, उसी प्रकार प्रणव से ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विधृत है।' 'प्रणव मन्त्रका ऋषि ब्रह्मा है, और गायत्री छन्द है, अग्निदेवता है, व्याहृतियों में इसका विनियोग कहा गया है।' प्रणव के पर्याय-वाचक ( एकार्थ-बोधक ) शब्द अनेक हैं। जैसे 'ॐ' 'प्रणव' 'सर्वव्यापक' 'अनन्त' 'तार' 'शुक्ल' वैद्युत्' 'हंस' 'तुर्य' 'परब्रह्म' इत्यादि सब नाम प्रणव के ही हैं, ऐसा जानों।

**'वाच्यः स ईश्वरः प्रोक्तो वाचकः प्रणवः स्मृतः।**
**वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति॥' (बृ० यो०**

या० २। ४४) 'ओमित्येतत् त्रयो वेदास्त्रयो लोकाः त्रयोऽग्नयः। विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च॥ मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः। तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात्॥' (मार्कण्डेयपुराणे) 'प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः। शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवस्तु परस्स्मृतः॥ शम्भोः प्रणववाच्यस्य भावेन तज्जपादपि। या सिद्धिः सा परा प्राप्या भवत्येव न संशयः॥ 'इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्। यस्तु वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः॥ संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः। प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि॥' (मार्कण्डेयपुराणे) (वायु. पु. उत्तर; अ. ७।) इत्यादिश्रुतिस्मृत्यादिभ्यः प्रणवस्य माहात्म्यं विपुलमवगम्यते।

'वाच्य-अर्थ वह प्रसिद्ध परमेश्वर है, वाचक शब्द प्रणव है, वाचकका उपासनाद्वारा अनुभव हो जाने से वह वाच्य-परमात्मा प्रसन्न हो जाता है, अर्थात् उसका साक्षात् दर्शन हो जाता है।'

यह ॐकार ही तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव एवं ऋक्-साम और यजुर्वेद हैं। इस ॐकारमें वस्तुतः साढे तीन मात्राएं जाननी चाहिये। उनके चिन्तनमें लगा हुआ योगी उन्ही में लय को प्राप्त होता है।

'शिव-परमात्माका वाचक प्रणव है, शिव-रुद्र-शम्भु-हरि-विष्णु इत्यादि शब्दोंका अर्थ उत्कृष्ट अर्थात् ॐकार ही है। वाच्य-वाचक

को एक होने से प्रणव-वाच्य-शम्भु-महादेव की भावनासे, या प्रणव मन्त्रके जपसे भी परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है, इसमें लेश मात्र भी संदेह नही है।' यह वायुपुराणमें कहा गया है।

यह ॐकार नामक अक्षर, परब्रह्म स्वरूप है। जो मनुष्य इसे भली भांति जानता है, अथवा इसका ध्यान करता है। वह संसारचक्र का त्याग करके त्रिविध बन्धनों से मुक्त हो परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाता है। यह मार्कण्डेय पुराणमें कहा गया है।

इस प्रकार श्रुति–स्मृति–एवं पुराणादि शास्त्रोंके द्वारा प्रणव मन्त्रकी अपार महिमा जानी जाती है।

**ॐकारस्याऽकारादिमात्राविश्वादिपादाभेदगमकतत्त्वार्थमग्रेऽव्रोचाम। यस्योच्चारणं विना सर्वं श्रौतस्मार्तादि कर्मकलापं निष्फलं सम्पद्यते। तस्य महत्त्वमवर्णलभ्यमप्यवधेयम्। तदुक्तं–' यदोङ्कारमकृत्वा किञ्चिदारभ्यते, तद्वज्रीभवति, तस्माद्वज्रभयाद्भीतमोङ्कारं पूर्वमारभेदिति।' (छान्दोग्यपरिशिष्टे) ' ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यात् आदावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति॥' (मनु. २। ७४) इति**

प्रणव के अकार उकार एवं मकार रूप तीनों मात्राओंका तथा विश्व–तैजस एवं प्राज्ञरूप तीनों पादों का अभेदार्थ–बोधक–तात्त्विक रहस्यमय व्याख्यान, हमने शुक्ल यजुर्वेद संहितोपनिपत् की अध्यात्म ज्योत्स्ना विवृतिमें विस्तारपूर्वक किया है। जिसके उच्चारणके बिना समस्त–श्रौत–स्मार्त आदि कर्म समुदाय निष्फल हो जाता है, अर्थात् प्रणव मन्त्रके उच्चारणसे ही सब शास्त्रीय कर्मकलाप सफल होता

है, अत एव उसका महत्त्व बिना कहे ही सिद्ध हो जाता है। इस लिए परिशिष्ट—छांदोग्य श्रुतिमें भी कहा है कि 'ॐकारके उच्चारण किये बिना जो कुछ कार्य प्रारम्भ किया जाता है, वह वज्रके तुल्य भयंकर कठिन दुष्कर हो जाता है, इस लिये कार्य को शीघ्र सफलपूर्ण करनेके लिए प्रथम प्रणव मन्त्रका उच्चारण अवश्य करना चाहिए।' मनुस्मृतिकी भी यही आज्ञा है कि—' ब्रह्मका वाचक प्रणव मन्त्र है, प्रत्येक कर्मके आदिमें तथा अन्तमें ' ॐ ' कहना चाहिए, या वेदाध्ययनके आदिमें तथा अन्तमें 'ॐ' बोलना चाहिए। बिना प्रणवोच्चारणके उभयथापि कर्म विगुण हो कर विशीर्ण हो जाता है।

अथ व्याहृत्यर्थः—''भूर्भुवस्स्वः' इति तिस्रो व्याहृतयः। भवति-अस्तीति सदिति व्युत्पत्त्या भूरिति सन्मात्रं त्रिकालाबाध्यं तत्त्वमुच्यते, भू सत्तायां स्मरणात्। भुवरिति सर्वं दृश्यजातं भावयति—प्रकाशयति स्वभूतया अविपरिलुप्तया स्वयंप्रभातया चैतन्यदृशा इति व्युत्पत्त्या चिद्रूपमुच्यते। सुव्रियते—सर्वैरभ्यर्थ्यते इति व्युत्पत्त्या स्वरिति सुष्ठु सर्वैः व्रियमाणं सुखस्वरूपमुच्यते इति। अत एव सच्चिदानन्दलक्षणयुक्तस्य प्रत्यगभिन्नस्य ब्रह्मणः स्वरूपं तैत्तिरीयारण्यके 'भूर्भुवस्स्वर्ब्रह्म' (तै. आ. ८।९) इत्येवमाम्नातम्। तत्र सद्रूपभूर्व्याहृतिजपार्थभावनया मृत्युभयं, चिद्रूपभुवर्व्याहृतिजपार्थभावनया बुद्धेरज्ञानमिथ्याज्ञानादिलक्षणं जडत्वं, आनन्दरूपस्वर्व्याहृतिजपार्थभावनया त्रिविधं दुःखञ्च विनिवर्तते।

अथ व्याहृतियों का अर्थ प्रारम्भ किया जाता है ।

' भूर्भुवः स्वः ' ये तीन व्याहृतियां हैं । भूः=सत्ता, अर्थात् तीनों कालमें मौजूद रहनेवाली नित्य सन्मात्र-वस्तुको भूः कहते हैं । भुवः=दृक्-चैतन्य, अर्थात् समस्त दृश्य-प्रपञ्चको जो स्वस्वरूपभूत–अविपरिलुप्त–स्वयंप्रभात–चैतन्यदृष्टिसे प्रकाशित करता है, उस चिद्रूप वस्तु को भुवः कहते हैं । स्वः = आनन्द, अर्थात् सबलोग जिसको चाहते हैं, उस सर्व–वरणीय सुखस्वरूप को स्वः कहते हैं । इस लिए सत्–चित् एवं आनन्द लक्षणसे युक्त–प्रत्यगभिन्न–ब्रह्मका स्वरूप तैत्तिरीयारण्यकमें ' भूर्भुवः स्वः ' यही ब्रह्म है, ऐसा स्पष्ट कहा है । सत्स्वरूप–भूः व्याहृति की जपार्थ–भावनासे मृत्युभयकी, चिद्रूप ' भुवः ' व्याहृति जपार्थ–भावनासे बुद्धिके अज्ञान–मिथ्या ज्ञानादिरूप जडत्वकी और आनन्दरूप ' स्वः ' व्याहृति–जपार्थ भावना से आध्यात्मिकादि त्रिविध–दुःखोंकी निवृत्ति होती है ।

व्याहृतिशब्दार्थस्तु–' भूर्भुवस्स्वस्तथा पूर्वं स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ व्याहृता ज्ञानदेहेन तेन व्याहृतयः स्मृताः ॥ ' (यो० याज्ञ० अ० १ । श्लो. ९) इत्यत्राभिहितः । यद्वा तैत्तिरीयश्रुत्या भूरिति अयं मर्त्यलोकः, भुवरित्यन्तरिक्षलोकः, स्वरिति स्वर्गलोकः, अग्निवाय्वादित्याः, ऋक्सामयजूंषि, प्राणापानव्याना वाऽपि क्रमशः ताभ्यः तिसृभ्यो विज्ञायन्ते । ' प्रधानं पुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद्व्याहृतयः स्मृताः ॥ " ( कूर्म. पु. उत्त, १४ । ५४ )

इति वचनेन प्रधानादयोऽपि । तेषां समेषां ब्रह्मसत्ताव्यतिरेकेण पृथक्सत्ताया अभावादेवादौ प्रयुक्तोऽसौ प्रणवो ब्रह्मस्वरूपतामभिधत्ते ।

व्याहृति शब्दका अर्थ—' भूर्भुवः स्वः ' ये तीनों व्याहृतियां सृष्टि—के आदिमें स्वयंभू—ब्रह्माने अपने ज्ञानदेहसे व्याहृत अर्थात् उच्चारण की थीं, इस लिए उन्हें व्याहृति कही गई है। इस श्लोकमें कहा गया है।

अथवा तैत्तिरीय श्रुति के आधार पर—भूः यह मर्त्यलोक है, भुवः अन्तरिक्ष लोक है, और स्वः स्वर्गलोक है । अथवा अग्नि, वायु, आदित्य, ये तीन देव, किंवा, ऋक् साम यजुः, ये तीन वेद, या प्राण अपान व्यान ये तीन वायु का भी क्रमशः तीनों व्याहृतियों से बोध होता है । कूर्मपुराणमें--प्रधान, पुरुष एवं काल, तथा ब्रह्मा विष्णु एवं महेश्वर, तथा सत्त्व, रजः एवं तमः, इन तीनों का भी क्रमशः तीनों व्याहृतियों से ग्रहण किया जाता है। ब्रह्म सत्ताके अतिरिक्त --पृथक् सत्ता का सर्वथा अभाव होने के कारण गायत्री मन्त्रके आदिमें प्रयुक्त ॐकार उन सभी पदार्थोंको ब्रह्मस्वरूप ही प्रतिपादन करता है।

तैत्तिरीयकास्तु–' ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यमित्येवं प्रणवादिसप्तव्याहृत्युपेतां गायत्रीं शिरःसमेतां प्राणायामे जपनीयत्वेन वदन्ति । अत एवान्येऽप्याहुः—' सप्तव्याहृतिषु प्रोक्तः प्रणवोऽयं पुनः पुनः । सप्तानामपि लोकानां वक्ति ब्रह्मस्वरूपताम् ॥ उपलक्षणतः सप्त-

पातालानां तथैव च। सर्वलोकस्थजीवानां वक्ति ब्रह्मस्वरूपताम्॥ इति। यद्वा साधकेष्टं विविधं आ=समन्तात् हरन्ति=प्रयच्छन्ति, तदनिष्टं वा विविधमासमन्तात् हरन्ति=विनाशयन्तीति व्याहृतयः।

तैत्तिरीय शाखावाले कहने हैं कि–'ॐ भूः ॐ भुवः इत्यादि सप्रणव-सप्त-व्याहृति युक्त-शिरः संयुक्त गायत्री को प्राणायाममें जपनी चाहिये। अत एव अन्य आचार्य्य भी ऐसा ही कहते हैं–'सप्त व्याहृतियों में पुनः पुनः कहा गया वह प्रणव–मन्त्र, सप्त लोकों की ब्रह्म स्वरूपता का प्रतिपादन करता है। उपलक्षणसे सप्त व्याहृति अतल–वितलादि सप्त पातालोंका भी बोधन करती है, एवं प्रणव उन सप्त पातालों की तथा चतुर्दश लोक–स्थित–समस्त जीवों की भी ब्रह्म स्वरूपताका बोधन करता है। अथवा साधकोंके विविध इष्टों को जो सर्वतोभावेन समर्पण करती हैं एवं विविध प्रकार के अनिष्टों को सर्वतः विनष्ट कर देती हैं, उन्हें व्याहृति कहते हैं।

'ॐ आपो ज्योतिः रसोऽमृतम्' इत्ययं गायत्रीशिरोमन्त्रः। आपः=आप्नोतीति व्युत्पत्त्या अखण्डसत्तादिस्वरूपेण सर्वव्यापकः। स एव स्वयंप्रकाशमानत्वाज्ज्योतिः। स एव रसः=सर्वातिशायी परमानन्दस्वभावः। स एव अमृतं=मरणादिसकलसंसारधर्मनिर्मुक्तम्, तदेवोङ्कारलक्ष्यं ब्रह्माहमस्मीति सततं भावयेत्। यद्वा आपः=प्रसिद्धाः नदीसमुद्रादिगताः, ज्योतिः=प्रसिद्धमादित्यादिकं, रसः=प्रसिद्धो मधुराम्लादिः षड्विधः, अमृतं=देवैः पातव्यं यत्किमपि, तत्सर्वमोम्=प्रणव-

प्रतिपाद्यं ब्रह्मैव तत्र सर्वत्र ब्रह्म विभावयेदिति सूचयितुमादावोङ्कारः। पक्षेऽस्मिन् मन्त्रस्येयं पदयोजना–सवितुः देवस्य यद्वरेण्यं भर्गः, नः धियः प्रचोदयात् तत् धीमहि, कीदृशं तत् ? 'भूः भुवः स्वः।' पुनः कीदृशं ? ओमिति।

'ॐ आपो ज्योतिः रसोऽमृतम्' यह गायत्रीका शिरो मन्त्र है। आपः=व्यापक वस्तु, अखण्ड–सत्ता से चैतन्यसे एवं आनन्द से जो सर्वत्र व्यापक है, उसे आप कहते हैं। आप्ल व्याप्तौ धातुसे आप शब्द बनता हैं। वही स्वयं प्रकाशमान होने के कारण ज्योतिः कहाता है, वही सर्वातिशायी–परमानन्द–स्वभाव होनेके कारण रस कहा गया है, वही मरणादि–सकल संसार–धर्मों से विमुक्त होने के कारण अमृत है। वही ॐकार मन्त्रका लक्ष्य ब्रह्म मैं ही हूँ, ऐसी सर्वदा भावना करनी चाहिए। अथवा यथा–श्रुतार्थ इस प्रकार समझना चाहिए कि–नदी समुद्र–तडागादियों में जो प्रसिद्ध जल है, वही आप शब्दार्थ है, प्रसिद्ध–सूर्यादियों का तेज ज्योति शब्दार्थ है, प्रसिद्ध मधुर–आम्लादि छः प्रकार का रस रसशब्दार्थ है। देवताओं के पीने योग्य–अलौकिक अमृत अमृतशब्दार्थ है। वह सब प्रणव प्रतिपाद्य ब्रह्मस्वरूप ही है। उन सबमें ब्रह्मकी भावना करो, ऐसा सूचित करने के लिए सर्व प्रथम प्रणवका उच्चारण किया गया है। इस पक्षमें समग्र मन्त्रका अन्वय इस प्रकार है–सविता देवका वरेण्य जो भर्ग है, जो हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता है, उसका हम ध्यान करते हैं, वह कैसा है ? भूर्भुवः स्वः, पुनः कैसा है ? ॐ।

यदाहुः शिष्टाः–स्वात्माभेदेन गायत्र्यर्थं पूर्णं ब्रह्म

चिन्तयितुम्—'आदित्यान्तर्गतं यच्च, ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्। हृदये सर्वजन्तूनां जीवभूतः स तिष्ठति ॥ हृद्याकाशे च यो जीवः साधकैरुपवर्ण्यते। स एवादित्यरूपेण बहिर्नभसि राजते ॥ पाषाणमणिधातूनां तेजोरूपेण संस्थितः। वृक्षौषधितृणानाञ्च रसरूपेण तिष्ठति ॥, (याज्ञवल्क्यः) 'अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ध्यायेमहि विमुक्तये। तज्ज्योतिर्भगवान् विष्णुर्जगज्जन्मादिकारणम् ॥ सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह। ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ॥ जपान्ते संस्मरेद् भूयः एकमेवाद्वयं विभुम्। तेनैव सर्वकर्माणि सम्पन्नान्यकृतान्यपि ॥ यथा कथञ्चिज्जप्तैषा देवी परमपावनी। सर्वकामप्रदा प्रोक्ता विधिना किं पुनर्नृप ! ॥' ( विष्णुधर्मोत्तरपुराणे )

अपने आत्माके अभेद रूपसे गायत्री—अर्थ—पूर्ण ब्रह्मका ध्यान करने के विषयमें शिष्ट—महापुरुषों की कुछ उक्तियोंका निदर्शन किया जाता है—यथा—'आदित्य मण्डलके अन्तर्गत जो—निखिल—ज्योतियों में उत्तम ज्योति है, वही समस्त प्राणियोंके हृदयमें जीव रूपसे बिराजमान है। हृदयाकाशमें जिस जीवात्माका साधकगण वर्णन करते हैं, वही बाहरके आकाशमें आदित्यरूपसे सुशोभित हो रहा है। वही जीवात्मा, पाषाण, मणि, स्वर्णादि धातुओं में तेजः—कान्तिरूपसे अवस्थित है। एवं वृक्ष औषधी—तृणादिकों में रसरूपसे अवस्थित है। यह महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए 'मैं पर ज्योति ब्रह्म हूं' ऐसा हम ध्यान करते हैं। वही ज्योतिः

जगतकी उत्पत्ति–स्थिति–लयका कारण भगवान् विष्णु है। व्याहृति प्रणव एवं शिरोमन्त्र सहित गायत्री का जो सदा जप करते रहते हैं, उनको कहींसे भी भय प्राप्त नहीं होता, अर्थात् वे सदा सर्वत्र निर्भीक रहते हैं। गायत्री जप के अन्तमें भी एक ही अद्वय–विभु–परमात्मा का पुनः स्मरण करे। उसी स्मरणके प्रभावसे ही नहि किये हुए भी सर्व शुभ कर्म निष्पन्न हो जाते हैं। परम पावनी देवी गायत्रीका जप किसी भी प्रकारसे किया जाय, वह समस्त–इष्ट कामनाओं को पूर्ण करती है, हे राजन्! यदि विधिपूर्वक गायत्री का जप किया गया हो तो कहना ही क्या है? अर्थात् वह समस्त–अभ्युदय निःश्रेयस प्रद है। यह विष्णु–धर्मोत्तर पुराणमें कहा है।

'तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञातव्या ब्राह्मणेन सा। व्याहृत्योङ्कारसहिता सशिरस्का यथार्थतः॥ सशिराश्चैव गायत्री यैर्विप्रैरवधारिता। ते जन्मबन्धनिर्मुक्ताः परं ब्रह्म व्रजन्ति च॥' इति। गायत्रीशिरोमन्त्रस्य ऋष्यादिः–' ओमापो ज्योतिः रसोऽमृतम्' 'ॐ गायत्रीशिरसः प्रजापतिः–ऋषिः, गायत्री छन्दो, ब्रह्मवाय्वग्निसूर्याश्चतस्रो देवताः, प्राणायामे विनियोगः॥' गायत्रीशापोद्धारमन्त्रः...। ॐ अर्कज्योतिरहं ब्रह्म, ब्रह्मज्योतिरहं शिवः। शिवज्योतिरहं विष्णुः विष्णुज्योतिरहं शिवः॥ इति।

इस लिए ब्राह्मण को–प्रणव, व्याहृति, शिरोमन्त्र सहित, गायत्रीका यथार्थ स्वरूप सर्व प्रयत्नके द्वारा जानना चाहिए। जिन विप्रोंने शिरोमन्त्र सहित गायत्री को धारण किया है, वे जन्म–बन्ध

से विनिर्मुक्त हो कर परब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। गायत्री-शिरो मन्त्र के ऋषि आदि इस प्रकार हैं, 'ॐ आपो ज्योतिः रसोऽमृतम्' इस गायत्री शिरोमन्त्रका प्रजापति ऋषि है, गायत्री छन्द है, ब्रह्मा, वायु, अग्नि और सूर्य ये चार देवता हैं, प्राणायाममें इसका विनियोग होता है। ' गायत्री शापोद्धारक-यह मन्त्र है-'सूर्यज्योति-ब्रह्म मैं हूं, ब्रह्मज्योतिः शिव मैं हूं, शिवज्योति विष्णु मैं हूँ, विष्णुज्योति शिव मै हूं।' इति।

अथ विशिष्टगायत्रीमन्त्रार्थः-ॐ अवति रक्षति चतुर्दशभुवनानीत्योम्। अव धातुः रक्षाप्रकाशपालनहिंसावृद्धयादिषु। उक्तञ्च-' अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्चाक्षरत्रयम्। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिदैवत्य उदाहृतः॥'(बृ. यो. याज्ञ. २। १९) इति। तत्=तस्य षष्ठ्यर्थे द्वितीया, सर्वलोकशास्त्रप्रसिद्धस्य, सवितुः=सर्वभावानां प्रसवितुः=उत्पादकस्य-ब्रह्मसंज्ञकस्य 'षुञ प्राणिप्रसवे' सुनोति-उत्पादयति चराचरं जगत् स सविता, षु-प्रसवैश्वर्ययोर्वा, सर्ववस्तूनां प्रसवः=उत्पत्तिस्थानं सर्वैश्वर्यस्य च स्वामी इति व्युत्पत्तेः। उपलक्षणमिदं सर्वभावानां रक्षितुः विष्णुसंज्ञकस्य, अन्ते चोपसंहर्तुः रुद्रसंज्ञकस्य, ब्राह्मी-वैष्णवीरौद्रीशक्तित्रितयविशिष्टस्य उपासनार्थं मायया परिगृहीत-दिव्यविविधसाकारविग्रहयुक्तस्य सकलोत्पत्तिस्थितिसंहारकारिण एकस्यैव परमेश्वरस्य।

अब विशिष्ट गायत्री मन्त्रका अर्थ प्रतिपादन करते हैं। भूर्भुवरादि चतुर्दश भुवनों की जो रक्षा, प्रकाश, पालन, वृद्धि, संहार

आदि करता है, वह ॐ है। अव धातु रक्षा, प्रकाश, पालन, हिंसा वृद्धि आदि अर्थों में स्मृत है। कहा भी है—'अकार उकार एवं मकार यह अक्षर त्रय ही ब्रह्मा विष्णु एवं रुद्र ये त्रिदेव हैं, उन्हींसे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति एवं लय होता है। अत एव तीनों देवों का वाचक प्रणव है।'' तत्सवितुः' इसमें तत् पद षष्ठी के अर्थमें द्वितीया समझनी चाहिए। ऐसा करनेसे तस्य का—जो सर्वलोक—एवं सर्वशास्त्र में प्रसिद्ध है, यह अर्थ मिलता है। ऐसा जो सम्पूर्ण पदार्थों का उत्पादक--पितामह ब्रह्मा बोधित होता है। षुञ् धातुका सर्व प्राणियोंका प्रसव-उत्पत्ति अर्थ है। जो चराचर जगतकी उत्पत्ति करता है, वह सविता है, या षु धातु का प्रसव एवं ऐश्वर्य अर्थ है। सर्व वस्तुओं का जो उत्पत्ति स्थान है, या जो सर्व-ऐश्वर्य का स्वामी है, वह सविता है। उत्पत्ति उपलक्षण है, रक्षा एवं संहार भी समझना चाहिए, क्योंकि--उत्पन्न-पदार्थकी रक्षा नितान्त आवश्यक है, अर्थात् समस्त पदार्थों का रक्षिता विष्णु है, अन्त में उपसंहार अनिवार्य हो जाता है, इस से समस्त पदार्थों का उपसंहार—लय कर्ता रुद्र बोधित होता है। ब्राह्मी (महासरस्वती) वैष्णवी (महालक्ष्मी) रौद्री (महाकाली) इन तीनों महाशक्तियों से विशिष्ट एक ही परमेश्वर है, वही उपासना के लिए माया से दिव्य विविध पञ्चमुख चतुर्मुख चतुर्भुजादि-साकार विग्रहों को धारण करता है। वही सकल विश्वकी उत्पत्ति-स्थिति एवं संहारकर्ता है।

**' सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्। '**
**'एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥, इति च भागवते**

स्मरणात् । अत एवाभिष्टवीति कश्चन-'नमः सवित्रे जगदेक-चक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे । त्रयीमयाय त्रिगुणात्म-धारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने' ॥ इति ।

जैसा कि श्रीमद्भागवत में कहा है-' विश्वका सर्जन रक्षण, एवं संहार करता हुआ एक ही परमेश्वर उस-उस-उत्पत्त्यादि-क्रियाओंके योग्य ब्रह्मा-विष्णु शिव आदि संज्ञा धारण करता है।' 'एक ही परमात्मा की मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर त्रिदेव रूपसे आ-विर्भूत होती है।' अत एव कोइ साधक भक्त इस प्रकार ही परमेश्वर की स्तुति करता है—' सविता देव को नमस्कार है, जो एकमात्र सकल जगत् का प्रकाशक चक्षु है, जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाशका कारण है, जो वेदत्रयीमय है, अपने में त्रिगुणों को धारण करता है, एवं जो विरंचि ( ब्रह्मा ) नारायण एवं शंकर स्वरूप है।' अर्थात् क्रिया-आकृति एवं संज्ञाके भेद से भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हुए भी वे तीन देव एक ही ईश्वर है।

देवस्य=भक्तहृदये द्योतमानस्य । वरेण्यं=वरणीयं-सेवनीयं, पुरुषार्थकामिभिः-प्रार्थनीयं वा त्रिविधदुःखदोषा-दीनां विनाशाय ध्यानेनोपासनीयं वेत्यर्थः । भर्गः=तेजोमय-दिव्यरूपं स्मरणमात्रेण पापसंतापभञ्जनहेतुभूतमित्यर्थः । तदेव धीमहि=तस्यैव वयं स्मः, स एवास्माकमिति दृढेष्टसम्बन्ध-भावनया चिन्तयामः । यद्वा स एवाहमिति तेनैवाभेदसिद्ध-येऽनन्यप्रेम्णा तदेव ध्यायामः ।

भक्तोंके हृदयमें प्रकाशमान, देव शब्दका अर्थ है । सेवन

भजन करने योग्य, या धर्मादि-चतुर्विध-पुरुषार्थ चाहनेवालोंको प्रार्थना करने योग्य, या विविध-दुःखोंसे एवं दोषों से छुटकारा पानेके लिये ध्यानद्वारा जो उपासनीय है, वह वरेण्य शब्दका अर्थ है। तेजोमय-दिव्यरूप-जिसके स्मरणमात्र से पाप एवं संताप का भर्जन ( विनाश ) हो जाता है, वह भर्ग शब्दका अर्थ है। उसी ही ज्योति का हम ध्यान करते हैं, अर्थात् 'उसीके ही हम हैं, वही हमारा है' इस प्रकार की दृढ-इष्ट सम्बन्धकी भावनाद्वारा उसीका हम चिन्तन करते हैं। अथवा 'वही दिव्य-ज्योतिरूप परमात्मा मैं हूँ' इस प्रकार उसके साथ अभेद भावकी सिद्धिके लिए अनन्य-प्रेमसे उसका ही हम ध्यान करते हैं।

**इत्येवमिष्टदेवस्य तस्य परमेश्वरस्य ध्यानं विधाय, तमेव सर्वशक्तिमन्तं भगवन्तं वयमर्थयामहे इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारायेत्याह—यः=सविता देवो निर्गुणोऽपि गुणवानमूर्तोऽपि त्रिमूर्तिलक्षणो भगवान् भवान्, नः=अस्माकं, धियः=बुद्धीः—धारणावतीः प्रज्ञावृत्तीः, द्वितीयाबहुवचनम्। प्रचोदयात्=प्रेरयतु, याः किल दुष्कर्मदुश्चिन्तनविमुखाः सत्कर्मसच्चिन्तन-प्रवणाः सत्यः सकलधर्मादिपुरुषार्थान् यथा प्रकृष्टतया साधयेयुः तथा ताः कृपाकूपारो भक्तवत्सलः श्रेयस्करेषु कर्मसु चिन्तनेषु च योजयतु।**

इस प्रकार उस इष्टदेव-परमेश्वर का ध्यान करके इष्टप्राप्ति और अनिष्ट-निवृत्तिके लिए उसी ही सर्वशक्तिमान् प्रभुभगवान्की हम प्रार्थना करते हैं-यह मन्त्र द्वारा कहा जाता है-जो प्रसिद्ध-सविता देव निर्गुण होता हुआ भी गुणवान् है, अमूर्त-निराकार होता हुआ भी

ब्रह्मा विष्णु एवं रुद्ररूप त्रिमूर्ति साकार है, वही भगवान् आप—हम लोगों की प्रज्ञा-धारणावाली बुद्धि वृत्तियों को शुभ-प्रेरणा करें। अर्थात् वे हमारी बुद्धि-वृत्तियाँ दुष्कर्म एवं दुश्चिन्तनसे विमुख हो कर सत्कर्म एवं सच्चिन्तन के अभिमुख होतीहुई जिस प्रकार अच्छीरीति से धर्मादि सकल पुरुषार्थों को सिद्ध करें, उस प्रकार उन बुद्धि-वृत्तियों को करुणा-सागर भक्तवत्सल भगवान् कल्याणकारी कर्मों में एवं चिन्तनों में संयुक्त करे, यही प्रार्थना है।

यद्वा याः—अशाश्वतदुःखालयसंसारचिन्तनं विहाय शाश्वतसुखनिधेर्भवतोऽनन्यचिन्तनपरा भवेयुः। तथा ताः—प्रचोदयात्=प्रेरयतु—इत्येवं प्रार्थना विधीयते। अनन्तसामर्थ्यस्य विश्वप्रेरयितुस्तवैतन्न दुष्करमिति भावः।

अथवा-अशाश्वत एवं दुःखालय—असार—संसारके चिन्तनका परित्याग करके शाश्वत एवं सुखभण्डाररूप आपके अनन्य—चिन्तनके परायण वे वुद्धिवृत्तियाँ होवें, इस प्रकार उन वृत्तियों की शुभ प्रेरणाएं प्रदान करे, ऐसी यहां भगवान्की प्रार्थना की जाती है। अनन्त-सामर्थ्य वाले विश्वप्रेरक तुझ भगवान्के लिए यह कुछ दुष्करकार्य नहीं है, किन्तु सुकर—सुलभ है।

ननु—अतिदूरे वर्तमानोऽसौ किं ते प्रार्थनं श्रोष्यति? किं वा तवेष्टं साधयिष्यति? इत्याशङ्क्याह—भूः भुवः स्वः= भूरादिसर्वलोकानभिव्याप्य तान् प्रकाशयन् सदा नेदिष्टेऽप्यसौ अवतिष्ठते, तथा च तस्य दूरत्वमयुक्तप्रार्थनश्रवणत्वेष्टसाधकत्वाभावाशङ्का दूरोत्सारिता। सत्येवमस्मिन् पक्षे

**मन्त्रस्यायमन्वयः–' तस्य सवितुः देवस्य यद्वरेण्यं भर्गः तत् धीमहि, कीदृशं तत् ?–'भूः भुवः स्वः । पुनः कीदृशं ? ओ३म् ? तत् नः धियः प्रचोदयात्, इति ।**

यदि यह आशंका हो कि–वह परमेश्वर यहांसे अतिदूर वैकुण्ठादिलोक में अवस्थित है, भूलोकादि में की हुइ तेरी प्रार्थना को क्या वह सुनेगा ? क्या इससे तेरे इष्ट की सिद्धि करेगा ? इस शंका का समाधान कहते हैं कि–वह परमात्मा भूर्भुवः स्वः आदि समस्त लोकों को अभिव्याप्त करके उनका प्रकाशन करता हुआ वह सदा सबके अत्यन्त समीपमें भी अवस्थित रहता है, इससे दूरत्व प्रयुक्त प्रार्थना श्रवणके अभावकी एवं इष्ट–साधकत्व के अभावकी आशंका दूर हटा दी जाती है। अर्थात् भूरादि व्याहृतित्रयसे उसकी सर्वत्र सदा–हरवक्त मौजूदगी बतलाई जाती है, वह सर्वत्र विराजमान हैं, कहीं भी श्रद्धा–एकाग्रतापूर्वक प्रार्थना की जाय, वह सुनता है, एवं शीघ्र ही इष्ट–फल प्रदान करता है । इस प्रकार प्रकृत में गायत्री–मन्त्रका अन्वय पूर्वक–ऐसा अर्थ समझना चाहिए–उस प्रसिद्ध सवितादेवका जो वरणीय–भर्ग–तेज है, उसका हम ध्यान करते हैं, वह किस प्रकार का है ? भूर्भुवः स्वःसे संयुक्त है, अर्थात् भूरादि समस्त लोकों में व्याप्त है, पुनः वह ॐ स्वरूप हैं। वही हमारी बुद्धि–वृत्तियों को प्रेरित करे।

**इत्येवमुत्तमाधिकारिभ्यः शुद्धमद्वैतं परं ब्रह्मोपदिशन्ती शुद्धा, मध्यमाधिकारिभ्यश्च विशिष्टं सगुणमपरं ब्रह्मोपदिशन्ती विशिष्टा च गायत्री विद्वद्भिराख्यायते**

इस प्रकार उत्तम–अधिकारियों के कल्याणके लिए वह

गायत्री शुद्ध—माया विनिर्मुक्त अद्वैत—परब्रह्मका उपदेश दे रही है, इस लिए उसे शुद्ध—गायत्री विद्वान् लोग कहते हैं । तथा मध्यम—अधिकारियों के लिए माया—विशिष्ट सगुण—अपर ब्रह्मका उपदेश देती है, इसलिए वह विशिष्टा—गायत्री भी कही जाती है। अर्थात् मध्यम—अधिकारी भी धीरे धीरे सगुण उपासनाके द्वारा निर्गुण—परब्रह्मको जानें, क्रमिक विकास—वाद द्वारा उस अद्वैत शुद्ध—पूर्ण ब्रह्ममें निष्ठा स्थिर करना ही गायत्री मन्त्रका तात्पर्य है, यह विद्वानों का अनुभूत—रहस्य हैं ।

अथाधिदैवतम्—तदिति षष्ठ्यर्थे, तस्य=सर्वैर्दृश्यमानतया प्रसिद्धस्य देवस्य=दीप्तिक्रीडादियुक्तस्य । उक्तञ्च—'दीव्यते क्रीडते यस्माद्रोचते द्योतते दिवि । तस्माद् देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैवतैः ॥' (यो. याज्ञ. ९ । ५४) इति । सवितुः='षू प्रेरणे' सुवति स्वस्वव्यापारे प्रेरयति यः स सविता तस्य । यद्वा सूते सकलजनदुःखनिवृत्तिभूतां वृष्टिं जनयतीति सविता—'याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति। ' इति श्रुतेः । 'आदित्याज्जायते वृष्टि र्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।' इति स्मृतेश्च । यद्वा सूते सकलश्रेयांसि ध्यातृणामसौ सविता । 'उद्यन्तमस्तंयान्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते । ' इति श्रुतेः ।

अब अधिदैवत-अर्थका प्रकाश किया जाता है—तत् पदमें सवितुः पदके साथ सामानाधिकरण्यके लिए षष्ठी विभक्ति समझनी चाहिए । सभी प्राणियों के द्वारा दृश्यमान होने के कारण वह प्रसिद्ध है, यह तत् ( तस्य ) पदका अर्थ है । वह देव है, अर्थात् दीप्ति एवं

क्रीडा आदिसे युक्त है। यह योगी याज्ञवल्क्यने कहा है–' वह सविता देव आकाशमें स्वच्छन्द गति द्वारा क्रीडा कर रहा है, तथा समस्त–ब्रह्माण्डको घोतित कर रहा है, इसलिए वह देव कहा गया है, अत एव उसकी सब देव गण स्तुति करते हैं।' 'सभी प्राणियोंको अपने अपने व्यापारमें जो प्रेरित करता है, वह सविता है, 'षू प्रेरणे' धातुसे सविता शब्द बनता है। अथवा जो सकल प्राणियोंके क्षुधादि–दुःखकी निवृत्ति के लिए वृष्टिको उत्पन्न करता है, वह सविता है। श्रुति भी यही कहती है–' जिन रश्मियोंके द्वारा सूर्य विश्वको संतप्त करता है, उन्हींके द्वारा वह वृष्टि–प्रदान करता है।' स्मृति भी कहती है–'आदित्यसे वृष्टि उत्पन्न होती है, वृष्टिद्वारा अन्न उत्पन्न होते हैं। एवं अन्नके द्वारा सभी प्राणि–वर्ग उत्पन्न होते हैं–जीवित रहते हैं।' अथवा जो ध्यान करनेवालों के समस्त कल्याणों का प्रसव करता है, वह सविता है। श्रुति भी कहती है–' प्रातः उदित होनेवाले एवं सायं अस्त होनेवाले आदित्य–देवका ध्यान करनेवाला ब्राह्मण सर्व प्रकारके दुःखोंसे छूट कर सकल भद्रको प्राप्त करता है।

यद्वा सवितुः=जगतां प्रसवितुः सूर्यमण्डलावच्छिन्नस्य विश्वप्रेरकस्यान्तर्यामिणो विज्ञानानन्दस्वभावस्य पुरुषस्येत्यर्थः। 'सविता वै प्रसवानामीशे।' इति (कृष्णयजुःश्रुतेः) 'सविता सर्वभूतानां सर्वभावांश्च सूयते। सवनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते॥' इति स्मृतेश्च। अत एवाहुः–आदित्यमण्डलान्तर्गतपुरुषसद्भावं श्रुतिस्मृतिवादाः–'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखा-

**त्सर्व एव सुवर्णः ।' ( छां० १ । ६ । ६ ) 'य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति' (छा० ४।११।१) 'आदित्यमण्डले ध्यायेत्परमात्मानमव्ययम् ।' (शौनकस्मृतौ) 'देवोऽयं भगवान् भानुरन्तर्यामी सनातनः ।' ( सूर्यपुराणे १ । ११ )**

यद्वा समस्त जगत्का प्रसविता, सूर्यमण्डलान्तर्गत—विश्वप्रेरक विज्ञान एवं आनन्दस्वरूप पुरुष सविताका अर्थ है। कृष्णयजुर्वेदकी श्रुति कहती है—' उत्पन्न समस्त पदार्थों का नियन्ता सविता है।' स्मृति भी कहती है—' समस्त पदार्थों का उत्पादक सविता है, तथा उत्पन्न सभी पदार्थों का प्रेरक नियन्ता भी वही देव है। सवन (उत्पादन) करनेसे तथा प्रेरणा करने से वह सविता कहा जाता है।' इसलिए श्रुति—स्मृतिके वचन भी आदित्य—मण्डलके अन्तर्गत पुरुषके सद्भावका प्रतिपादन करते हैं—तथाहि ' आदित्य मण्डलके अन्तर्गत स्वर्ण—स्तम्भ तुल्य वह हिरण्यमय पुरुष योगियों के द्वारा देखा जाता है, वह सुवर्णवत् तेजस्वी दाढी—मूंछ एवं केशसे युक्त है, तथा नख से लेकर शिरःपर्यन्त सुवर्णके तुल्य भास्वर दिव्य कान्तिमान् है।' 'जो यह आदित्यमण्डलमें पुरुष देखा जाता है, वही मैं हूँ, उसे अपना ही स्वरूप समझना चाहिए, अभेद भावनामयी उसकी उपासना करनी चाहिए।' आदित्य मण्डलमें अव्यय—परमात्माका ध्यान करना चाहिए।' ' यह भानुदेव अन्तर्यामी सनातन भगवान् है।'

**'एष भूतात्मको देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः । ईश्वरः सर्वभूतानां परमेष्ठी प्रजापतिः ॥' इति ( भविष्य-**

पुराणे ) तस्य सवितुः वरेण्यं=अतिश्रेष्ठं-पुरुषार्थकामिभिः संभजनीयं। उक्तञ्च-'वरेण्यं सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदम्। स्वर्गापवर्गकामैर्वा वरणीयं सदैव हि॥' ( अग्निपु० २१६। ६ ) इति। भर्गः=दिव्यं तेजः-भजतां पापसन्तापभर्जनहेतुभूतमित्यर्थः। 'भ्राजृ दीप्तौ' 'भञ्जो आमर्दने' 'भृजी भर्जने' 'भ्रस्ज पाके' 'भृञ् भरणे' इत्येषां धातूनां रूपमिदम्।

यही सूर्य सर्वभूतमय सूक्ष्म अव्यक्त सनातन सर्वभूतों का ईश्वर परमेष्ठी–प्रजापति देव है।' उस सवितादेवके वरेण्यभर्गका साधकोंको ध्यान करना चाहिए। पुरुषार्थ सिद्धिकी कामनावालोंके द्वारा संसेवन-भजन करनेयोग्य अतिश्रेष्ठ भर्ग को वरेण्य कहते हैं। अग्निपुराणमें कहा है–'जो समस्त तेजों से श्रेष्ठ है, स्वर्ग एवं अपवर्ग की कामनावालों के द्वारा जो सदैव चाहनेयोग्य है, वही परमपद वरेण्य कहाता है।' भर्ग अर्थात् दिव्य तेज, जो भजन करनेवाले भक्तों के पाप एवं सन्तापों के भञ्जन का कारणरूप है। 'भ्राजृ दीप्तौ' 'भञ्जो आमर्दने' 'भृजो भर्जने' 'भ्रस्ज पाके' 'भृञ् भरणे' इन पांच धातुओंका यह भर्ग रूप है। दीप्ति यानी प्रकाश करना, आमर्दन यानी पाप संतापों को चूर्ण करना, भर्जन यानी कुटिल कर्मों को जला देना, पाक यानी पुण्यकर्मोंका फल देना, भरण यानी जगतका भरण पोषण करना।

अत एव प्रकाशप्रदानेन जगतो बाह्याभ्यन्तरतमोभञ्जकत्वाद्वा, कालात्मकतया सकलप्राणिकर्मफलपाकलक्षणभर्जनाद्वा वृष्टिप्रदानेन भूतानां भरणहेतुत्वाद्वा भर्गत्वमवधेयम्।

इसलिए सविताके उस श्रेष्ठ तेजमें-प्रकाश प्रदानद्वारा जगत् के बाह्य एवं आभ्यन्तर ( पापसंतापरूप ) तमः (अन्धकार) का भञ्जक होनेके कारण, कालस्वरूपके द्वारा सकल प्राणियों के कर्मफलों का परिपाकरूप भर्जन करने के कारण, एवं वृष्टि-प्रदानके द्वारा सर्व भूतों का भरण-पोषण करनेके कारण, भर्गत्व समझना चाहिए।

यद्वा भर्गः=भ-र-ग, भासयतीमाँल्लोकानिति भः, रञ्जयतीमानि भूतानीति रः, गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः सकलाः चराचररूपाः प्रजा इति गः। उक्तश्च-भेति भासयते लोकान् रेति रञ्जयते प्रजाः। ग इत्यागच्छतेऽजस्रं भरगाद्भर्ग उच्यते ॥' (बृ० यो० या० ९।४५) इति। तदेव वयं धीमहि=ध्येयतया उपास्महे इत्यर्थः। यः=यत्-अभिध्यातं तत्तेजो नः=अस्माकं धियः=बुद्धीः, अभ्युदयनिःश्रेयससाधकशोभनकर्मसु प्रचोदयात्, प्रेरयेत् इति प्रार्थनेयं वितन्यते।

अथवा भ, र, ग, इन तीन वर्णों को पृथक् पृथक् अर्थों से कहा है—यथा-इन लोकों को जो भासित करता है, वह भकार है, इन भूतों को जो रञ्जित ( आह्लादित ) करता है, वह रकार है, समस्त प्रजा जिससे आती हैं, एवं जिसमें जाती हैं, अर्थात् सकल प्रजाकी जो उत्पत्ति एवं संहार करता है, वह गकार है। यही अर्थ बृहत् योगी याज्ञवल्क्य स्मृतिमें भी कहा है। इस प्रकार का जो प्रसिद्ध भर्ग-ज्योति है, उसकी हम उपासना करते हैं, वही हमारा ध्येय है। वही अभिध्यात अत्युज्ज्वल तेज हमारी बुद्धियोंको अभ्युदय एवं कल्याण-

साधक शुभकर्मों में प्रेरित करे, यही प्रार्थना हम करते हैं ।

यद्यप्यत्र सवितुर्भर्ग इति सवितृभर्गयोर्भिन्नता प्रतीयते, तथापि तयोः परमार्थतो भेदो न विद्यते, य एव सविता, तदेव भर्गः इत्येवमद्वैतमेव, प्रतिमायाः शरीरमितिवन्मन्तव्यम् । कीदृशं पुनस्तत्तेजः ? अत आह–'भूः भुवः स्वः' लोकत्रयेऽभिव्याप्तमित्यर्थः । यद्वा–'भूरिति वै प्राणः' ( तै० उ० ५ । ३ ) इति श्रुत्या, प्राणयति जीवयति सर्वान् प्राणिन इति व्युत्पत्त्या च सर्वप्राणिजीवनहेतुभूतमित्यर्थः । भुवः=भावयति-स्थापयति सर्वं विश्वमिति व्युत्पत्त्या सर्वविश्वस्थापकं तदाधारभूतमित्यर्थः । स्वः=सर्वस्य सुखकारकमित्यर्थः । कीदृशं पुनस्तत् ? ॐ इति ।

यद्यपि यहां 'सवितुर्भर्गः' ऐसा कहनेसे सूर्य और तेज ये दो पदार्थ जुदे प्रतीत होते हैं, तथापि इन दोनों का वस्तुतः भेद नहीं है, दोनों अभिन्न ही हैं, जो सविता है, वही भर्ग है, अर्थात् दोनोंमें धर्म–धर्मिभाव प्रयुक्त व्यावहारिक भेद प्रतीत होने पर भी पारमार्थिक अभेद है । इस प्रकार सविता और भर्गका अद्वैत ही प्रकृत में सिद्ध होता है । जैसे प्रतिमाका शरीर यह अभेदार्थक लौकिक प्रयोग है, प्रतिमा ही शरीर है, परन्तु व्यवहारमें प्रतिमा का शरीर है, ऐसा कहा जाता है । किस प्रकारका वह भर्ग तेज है ? यह कहते हैं, भूर्भुवः स्वः अर्थात् तीनों लोकों में वह व्याप्त तेज है । अथवा भू यह प्राण है, समग्र प्राणियों के जीवन का कारणरूप है । और भुवः अर्थात् जिसमें विश्वकी अवस्थिति होती है, जो सर्वका अधिष्ठान स्वरूप है ।

स्वः यानी सबको सुखी करनेवाला, वह भर्ग तेज है। वह पुनः किस प्रकारका है? ॐ स्वरूप है, अर्थात् भूः भुवः स्वः इन तीनों की एकता प्रणवमें हो जाती है, ॐका शुद्ध स्वरूप ही सम्पूर्ण गायत्री मन्त्रका लक्ष्य है।

मन्त्रेऽस्मिन् 'धीमहि' पदं ब्रह्मसाक्षात्कारस्य प्रकृष्टं साधनं जपसहचरितं तदर्थभावनलक्षणं ध्यानमेव कर्तव्यतया बोधयति। यदाहुः-ध्यानस्य विशिष्टं महत्त्वं पौराणिका अपि-'कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते। तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते॥ जपयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते। ध्यानयज्ञात्परो नास्ति, ध्यानं ज्ञानस्य साधनम्॥' (लिङ्गपुराणे पूर्वार्द्धे. ७९। १३+१४) इति। अत एव गीतासु भगवता वेदपुरुषेण-'ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते' (गी. १२। १२) इत्युक्तम्। ध्यानस्य साक्षात्कारं प्रत्यव्यवहितहेतुत्वादस्ति सर्वसाधनश्रेष्ठत्वम्।

इस गायत्री मन्त्रमें 'धीमहि' पद ब्रह्म साक्षात्कारका प्रकृष्ट-साधन, जपसंयुक्त मन्त्रसे अर्थकी भावनारूप-ध्यानकी ही कर्तव्यता बतलाता है। ध्यानका विशिष्ट महत्त्व पौराणिकभी कहते हैं-'हजारों कर्म यज्ञोंसे तपोयज्ञ बडाहै, हजारों तपोयज्ञोंसे जपयज्ञ श्रेष्ठ है, हजारों जप-यज्ञोंसे ध्यान यज्ञ अधिक श्रेष्ठ है, ध्यान-यज्ञसे बडा अन्य कोईभी साधन नही है, ध्यान हीं ज्ञानका साधन है। यह लिङ्गपुराण कहता है। इसलिए श्रीभगवान् वेद-पुरुष की भी गीतामें यही राय है-'ज्ञानसे ध्यान उत्तम है।' साक्षात्कार के अव्यवहित-पूर्व में कारण-

रूपसे ध्यान ही रहता है, अर्थात् विना ध्यानके तत्त्वसाक्षात्कार होना असम्भव है। अत एव मुख्यतया ध्यान सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है।

**भर्गपदाभिधेयस्य पूर्णानन्दमयस्य दिव्यशान्ततेजसो ध्यानं सर्वश्रेष्ठमाह–'ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानं परात्परम्। भ्रुवोर्मध्ये मनोऽर्द्धे च यत्तेजः प्रणवात्मकम्॥' इति। 'ललाटमध्ये हृदयाम्बुजे वा यो ध्यायति ज्ञानमयीं प्रभां तु। शक्तिं यदा दीपवदुज्ज्वलन्तीं पश्यन्ति ते ब्रह्म तदेकनिष्ठाः॥' (याज्ञ० संहिता० उत्तरार्द्ध० १२। २५। ४) इति। 'सप्रभं सत्यमानन्दं हृदये मण्डलेऽपि च। ध्यायन् जपेत्तदित्येतन्निष्कामो मुच्यतेऽचिरात्॥' इति विश्वामित्रः। गायत्र्या सच्चिदानन्दलक्षणं यत्तत्त्वं प्रकाश्यते, तदेवाहमस्मीत्यभेदभावनां समादृत्यैव तां स्वात्मना ध्यायेत्। उक्तञ्च–'अथ वदामि गायत्रीं तत्त्वरूपां त्रयीमयीम्। यया प्रकाश्यते ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्॥' (गायत्रीतत्त्वे १) इति। 'न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह। सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित्॥' इति व्यासस्मृतेः।**

भर्ग–पदका अभिधेय–परिपूर्ण नित्य आनन्दस्वरूप शान्त एवं दिव्य तेजका ध्यान सर्व श्रेष्ठ है, यही करना चाहिए, कहा है–'तेजोमय ब्रह्मका मुमुक्षु ध्यान करे, तेजका ध्यान श्रेष्ठ साधन है।' दोनों भ्रुकुटियोंके मध्यमें या हृदयकमलमें दिव्य–प्रणवात्मक–तेज विराजमान है।' 'ललाट प्रदेशमें या हृदय कमलमें साधक ज्ञानमयी प्रभाका

ध्यान करता है, प्रदीपवत् जाज्वल्यमान चिति शक्ति को देखते हुए वे योगी ब्रह्मके साथ एक-निष्ठ होकर उसका साक्षात् दर्शन करते हैं।' यह याज्ञवल्क्य संहितामें कहा है। विश्वामित्र महर्षिने भी कहा है कि 'प्रभायुक्त-सत्य-आनन्द स्वरूप-तेजका हृदयमें या सूर्य-मण्डलमें ध्यान करता हुआ तथा गायत्री मन्त्रका जप करता हुआ निष्काम भक्त शीघ्र ही संसारसे विमुक्त होजाता है।' गायत्रीमन्त्रके द्वारा जिस सच्चिदानन्द रूप तत्वका प्रकाशन किया जाता है, 'वही तत्व मैं हूँ' ऐसी अभेद-भावनाका आदर करके उस भर्गरूपा गायत्रीका अपने आत्मरूपसे ध्यान करे। ×गायत्री तत्त्व ग्रन्थमें कहा है-'अब मैं वेद-त्रयीमयी तत्त्वस्वरूपी गायत्रीका कथन करता हूँ, जिसके अभ्यास से सत्-चित् आनन्दस्वरूप ब्रह्मका प्रकाश (अनुभव) होता है।' व्यास-स्मृति में भी कहा है-'गायत्रीको ब्रह्मसे भिन्न नहि समझना चाहिये, जिस किसीभी विधिसे (तरीकेसे) 'वही ब्रह्म मैं हूँ' इसप्रकार की

---

× साधक-भक्त एकान्त में बैठकर ब्रह्मचर्यादि-नियमोंका पालन करता हुआ-भर्ग-ज्योतिका ध्यान करे, अपनी भावनाके अनुसार प्रथम ज्वलित-दीप, हिमकण, अंगुष्ठ-परिमित, एवं यवशूकतुल्य ज्योति का दर्शन होता है, उसको वार वार ध्यानमें रखकर अभ्यास बढाना चाहिए, चित्तकी एकाग्रता एवं पवित्रताके परिपाकसे दिव्य आनन्दमयी भर्गज्योतिका साक्षात्कार होता है, उसके साथ सर्वथा अभेदस्थापित करलेना चाहिए, वह भर्ग ज्योति ही मेरा स्वरूप है, वही ब्रह्म है, नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त आत्मा ह, ऐसी दृढ-निरन्तर भावना करना ही भर्गका ध्यान है।

भावनापूर्वक गायत्रीकी उपासना करनी चाहिए। ' अर्थात् गायत्री मन्त्रके जपद्वारा अद्वैत-पूर्ण ब्रह्मकी सुनिश्चित एवं दृढ भावना करनी चाहिए, गायत्री-जप यह ब्रह्मोपासना है, अतः साधकोंको गायत्री तत्त्वका सर्वदा सर्वथा मनन एवं ध्यान करते रहना चाहिएं।

सदैव प्रणवव्याहृतिसंयुक्ता एव गायत्री जपनीया न तद्रहिता इत्याह शास्त्रवचनकदम्बम्-' ओङ्कारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवःस्वस्तथैव च ॥ गायत्री प्रणवश्चान्ते जपो ह्येवमुदाहृतः ॥' ( बृ. यो. याज्ञ ४। ५) ' जपेत्प्रणवपूर्वाभिर्व्याहृतिभि सदैव तु। तिसृभिर्भूःप्रभृतिभिर्गायत्रीं ब्रह्मरूपिणीम् ॥ ' ( लघ्वाश्वलायन १। ४५ ) ' ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम्। ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रःश्रद्धयान्वितः ॥ ' (कु.पु.-उ.भा. १४। २५ ) 'ओङ्कारं व्याहृतीस्तिस्रः प्रथमं संप्रयोजयेत्। ओङ्कारावास्त्रिरावृत्य वेदस्यारम्भणे तथा॥ प्रणवाद्या तु विज्ञेया जपे व्याहृतिभिः सह। प्रणवव्याहृतिभि सार्धं स्वाहान्ते होमकर्मणि ॥ ' ( बृ. यो. या. ४। ३८+३९ ) इत्यादिकम्।

प्रणव एवं व्याहृतिसे युक्त ही गायत्री हमेशा जपनी चाहिए, नकि-केवल गायत्री, इस विषयमें शास्त्रोंकी यह सम्मति है-'सर्वप्रथम प्रणवका उच्चारण करके तदनन्तर भूर्भुवः स्वः इन तीनों व्याहृतियों का उच्चारण करना चाहिए, यही जप करनेकी रीति कही गई है। ' 'प्रणव-पूर्वक भूःआदि तीन-व्याहृति सहित ब्रह्मस्वरूपिणी गायत्रीका सदैव जप करना चाहिए। ' ' ॐकार का आदिमें, उसके अनन्तर व्या-

हृतियोंका उच्चारण करके उसके बाद एकाग्र चित्तसे श्रद्धापूर्वक सावित्री (गायत्री)का जप करना चाहिए।' 'गायत्री–मन्त्रके उच्चारणसे प्रथम ॐकार एवं तीनव्याहृतियोंका उच्चारण करो।' तथा वेदारम्भमें ॐकारसहित तीन व्याहृतियोंका तीनवार उच्चारण करों।' 'जपमें व्याहृतियोंके साथ प्रणवाद्या (आदिमें है प्रणव जिसके) गायत्रीका प्रयोग करना चाहिए।' 'स्वाहान्त होम कर्ममें प्रणव एवं व्याहृतियोंके साथ गायत्रीका प्रयोग करना चाहिए।' इत्यादि शास्त्रोंके वचन हैं।

गायत्रीप्रणवयोगविधाने हेतुमाह–गायत्री प्रकृतिर्ज्ञेया ओङ्कारः पुरुषः स्मृतः। ताभ्यामुभयसंयोगाज्जगत्सर्वं प्रवर्तते॥ (बृ. यो. या. ४। १७) इति। गायत्रीजपस्य सर्वमन्त्रजपेभ्य उपमया परममुत्कृष्टत्वं दर्शयति–'नास्ति गङ्गासमं तीर्थं, न देवः केशवात्परः। गायत्र्यास्तु परं जाप्यं न भूतं न भविष्यति॥' (बृ. यो. या. १०। १०) 'गायत्र्या न परं जप्यं गायत्र्या न परं तपः। गायत्र्या न परं ध्यानं गायत्र्या न परं हुतम्॥' इति (ब्रह्मवाक्यम्)। 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (१०। ३५) इति गीतासु ब्रुवन् भगवान् पुरुषोत्तमः–हिंसादिदोषशून्यत्वेनात्यन्तशोधकस्य जपयज्ञस्य विधियज्ञेभ्योऽत्यधिकमेव महत्त्वमभिव्यनक्ति। तदाह मनुरपि–'पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः। सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥' (२। ८६) इति। 'विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥' (२।८५) इति। 'जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो

**नात्र संशयः । कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥' ( २ । ८७ ) इति मनुः ।**

गायत्रीका प्रणवके साथ सम्बन्ध करनेमें कारण बतलाते हैं– 'गायत्री प्रकृति है. और ॐकार पुरुष हैं. प्रकृति–एवं पुरुषके संयोगसे ही समस्त–जगत् प्रवर्तमान होता है. ।' समस्त मन्त्रोंके जपसे गायत्री मन्त्रका जप परम उत्कृष्ट है, यह उपमाके द्वारा बतलाया जाता है–'जगत् में गंगा के तुल्य और कोई तीर्थ नहीं है, और केशव प्रभु के तुल्य और कोई देव नहीं है, उसी प्रकार गायत्री से बढकर जप करने योग्य मन्त्र न है, न होगा, न हुआ और न तो होसकता है।' और भी कहा है–'गायत्री–जपसे कोई उत्तम जप नहीं है, और न तप है, न ध्यान हैं, न यज्ञ-यागादि है' अर्थात् सब यज्ञ-तपादि साधनोंका पर्यवसान गायत्री-जपमें होजाता है, इसलिए गायत्री-जप सर्वोत्तम-स्तुत्य साधन है। 'यज्ञोंके मध्यमें जपयज्ञ स्वयं मै हूँ, ऐसा गीतामें कहते हुए भगवान्-पुरुषोत्तम–श्रीकृष्णने–'हिंसादि दोषोंसे रहित होने के कारण हृदयकी अत्यन्त-शुद्धिका साधक-जपयज्ञ में विधियज्ञोंकी अपेक्षा अत्यधिक ही महत्त्वकी अभिव्यक्ति की है।' यह मनुने भी कहा है–'विधि-यज्ञ संयुक्त चार पाकयज्ञ, वे सब जपयज्ञ की सोलहवीं कलाको भी प्राप्त नहीं होसकते हैं।' और भी कहा है–'विधियज्ञसे जपयज्ञ दशगुणा श्रेष्ठ है, उपांशु जप सौ गुणा श्रेष्ठ है, और मानसिक जप सहस्रगुणा अधिक श्रेष्ठ माना गया है।' 'गायत्री–मन्त्र के जपानुष्ठानसे ही ब्राह्मण सम्यक्-सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है।' इसमें कुछ संदेह नहीं है, अन्य साधन कुछ करे या न करे, तथापि

वह समस्त प्राणियोंका सच्चा मित्र ब्राह्मण कहा जाता है।'

जपस्य सामान्यं विशेषञ्च स्वरूपमुक्तं शास्त्रान्तरे– 'जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचकैः। धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम्॥ उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः। जिह्वौष्ठौ चालयेत्किञ्चिद् देवतागतमानसः। किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः। मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः॥' ( इतिनृसिंहपुराणश्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणतन्त्रसारादौ )

जप करनेका सामान्य और विशेष स्वरूपका अन्य शास्त्रों में इस प्रकार वर्णन किया है–'मन्त्रोंके अक्षरोंकी पुनःपुनः आवृत्तिका नाम जपहै, वह तीन प्रकारसे होता है, मानसिक, उपांशु एवं वाचिक, तीनोंका भेद इस प्रकार है–बुद्धिकेद्वारा उदात्त-अनुदात्तादिस्वर, सुप् तिङादि पद विशिष्ट, अक्षरोंकी पंक्ति की अर्थात् मन्त्रके समस्त वर्णों के शुद्ध-उच्चारण की मन्त्रार्थका ख्याल रख कर वारवार आवृत्ति जारी रखना, मानसिक जप कहा जाता है। उक्त आवृत्ति जप क्रममें यदि कुछ जिह्वा एवं ओष्ठ हिलते हों तो वह उपांशु जप कहा जाता है, इस जप में मानसिक देवताका ध्यान रहता हुआ भी कुछ श्रवण की योग्यता रह जाती है। वाणीसे जिस का स्पष्ट उच्चारण किया जाय, समीपवर्ति-पुरुष जिसको स्पष्ट रूपसे सुन सके, वह वाचिक जप कहा जाता है। यह वाचिक-जप प्राथमिक सोपान है, इसी क्रमसे मानसिक-जप सर्वोत्तम है।' यह नृसिंह-पुराण श्री विष्णु धर्मोत्तरपुराण, तन्त्रसार इत्यादि ग्रन्थों में कहा गया है।'

गायत्रीजपः सकलपापप्रणाशकारक इतीमानि दर्शयन्ति शास्त्रानेकवचांसि—'तस्या अग्निरेव मुखं यदि ह वा अपि बह्विवाग्नावभ्यादधति, सर्वमेव तत्संदहति, एवꣳहैवैवंविद्यद्यपि बह्विव पापं कुरुते सर्वमेव तत्संप्साय शुद्धः पूतोऽजरोऽमृतः संभवति।' (श० ब्रा० ८।१४।८) इति। अयमर्थः—तस्या =गायत्र्याः। तद्विज्ञानफलमाह—यदीति, यथा लोका यदि ह वा अपि बह्विव=बहुतरमपि, इन्धनमग्नावभ्यादधति=निक्षिपन्ति, तत्सर्वमग्निर्दहत्येव, यथाऽयं दृष्टान्तः, एवमेव ह गायत्र्या अग्निर्मुखमित्येवंवित्=इत्येवं ज्ञात्वा तदुपासकः स्वयमग्निमुखगायत्र्यात्मा सन् यद्यपि बह्विव=बह्वेव पापं प्रतिग्रहादिदोषं कुरुते, तत्सर्वं पापजातं संप्साय=सम्यग्भक्षयित्वाऽग्निवच्छुद्धः पापसंस्पर्शरहितः पूतश्च प्रतिग्रहादिदोषजनितपापफलसंबन्धरहितश्च संभवति। गायत्रीविज्ञानस्य क्रममुक्तिफलत्वं दर्शयति-अजर इति। एवं गायत्र्यात्माऽजरोऽमरश्च संभवतीत्यर्थः।

गायत्री-मन्त्रका जप सम्पूर्ण पापोंका प्रणाश करता है, इस विषयको शास्त्रोंके ये अनेक वचन बतलाते हैं—'उस गायत्रीका अग्नि ही मुखहै, जैसे प्रसिद्ध अग्निमें लाखों मन काष्ठों को डाला जाय, उन सबको वह जला डालती है, स्वयंशुद्ध रहती है। उसी प्रकार गायत्री के उपासकने प्रथम बहुतसे पाप क्यों न किये हों, तथापि गायत्री मन्त्र उन सब पापोंको भस्मीभूत कर डालता है, और अपने भक्त-साधकको शुद्ध-पवित्र अजर अमृत कर देता है।' गायत्रीका उपासक अग्निमुखवाली गायत्री स्वरूप ही

हो जाता है, यदि वह किसी कारणवशात् प्रतिग्रहादि दोष कर देता है, तथापि वह उन सब दोष-पाप समुदायको अग्नि-मुखसे भक्षण करके अग्निकी तरह शुद्ध पाप संस्पर्शसे एवं पापफल-दुःखादि सम्बन्धसे भी रहित हो जाता है। 'अजर' अर्थात् जरा अवस्था रहित देवस्वरूप होजाना, यह गायत्री-उपासना का क्रममुक्ति फल है। इस प्रकार वह गायत्री स्वरूप हुआ साधक अजर-अमर देव बन जाता है।

'सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतन्त्रिकं द्विजः। महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥' (मनु. २। ७९) इति। एतत्=प्रकृतं त्रिकं=प्रणवव्याहृतित्रयगायत्रीलक्षणं, बहिः=ग्रामाद्बहिर्नदीतीरारण्यादौ सहस्रावृत्तिं जप्त्वा महतोऽपि पापात् सर्प इव कंचुकान्मुच्यते इत्यर्थः। 'गायत्रीजपकृद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥' इति पराशरस्मृतेः। 'सर्वपापानि नश्यन्ति गायत्रीजपतो नृप!।' इति भविष्ये। 'ब्रह्महत्यादिपापानि गुरूणि च लघूनि च। नाशयत्यचिरेणैव गायत्रीजापको द्विजः ॥' इति पद्मपुराणेऽपि। 'हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे। तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ॥' (शङ्खसंहिता ११। १४) इति। अखिलपापानि निवार्य नरकार्णवपाताद्रक्षतीत्यर्थः।

मनु महाराजने भी कहा है-'ब्राह्मणादि द्विज, ग्राम एवं नगरसे बाहर नदी-तीर अरण्य आदि एकान्त पवित्र क्षेत्रमें रहकर प्रणव और त्रिव्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्रका एक हजार जप प्रतिदिन करे तो एक

मासमें वह महा पापोंसे छूट जाता है, जैसे सर्प अपनी कंचुकीसें छुट जाता है।' महर्षि पराशरने भी कहा है-'भक्तिपूर्वक गायत्रीका जप करनेवाला द्विज समस्त पापोंसे विमुक्त होजाता है।' भविष्य पुराणमें भी कहा है-हे राजन्! गायत्रीके जपसे समस्त पाप नष्ट होजाते है।' पद्मपुराण में भी कहा है-'गायत्री जप करनेवाला त्रिवर्णिक द्विज ब्रह्महत्यादि बडे पाप, तथा अनृत-भाषणादि छोटे पापोंका भी जपसे शीघ्रही नाश करवा देता है। अर्थात् गायत्री जपसे सभी पापोंको हटाकर शुद्ध-पवित्र होना ब्राह्मणादि त्रैवर्णिकों का प्रधान कर्तव्य है। शंखसंहितामें भी कहा है-'गायत्री देवी नरक रूपी सागरमें गिरते हुए व्यक्तियोंके लिए हस्तत्राणप्रदा है, अर्थात् हाथका सहारा देकर उनको उससे बचा देती है, इस लिए ब्राह्मण मात्रका परमकर्तव्य है कि-नियमितरूपसे पवित्र हो कर गायत्रीका जपानुष्ठान प्रतिदिन अवश्य करे।' वह भगवती गायत्री निखिल-पापोंका निवारण करके नरक-समुद्रके पतन से रक्षा करती है।

**'सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्। गायत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापेन लिप्यते॥' ( अत्रि स्मृ० २।९) इति। सहस्रपरमा=सहस्रकृत्वो जपः परमः=श्रेष्ठो विद्यते यस्याः सा तामित्यर्थः। शतमध्यां=शतकृत्वो जपो मध्यमो विद्यते यस्याः सा तामित्यर्थः। दशावरां=दशकृत्वो जपोऽवरः=कनिष्ठो विद्यते यस्याः सा तामित्यर्थः। 'गायत्रीं विस्तराद् दिव्यां पठेदेव शृणोति च। मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति॥' इति ब्रह्मवाक्यम्॥' 'जपस्याऽभ्यन्तरे व्या-**

**ख्या स्मर्तव्या मनसा द्विजैः । स्मरणात्सर्वपापानि प्रणश्यन्ति न संशयः ॥ '( इति भारद्वाजः )**

गायत्री का प्रतिदिन एक सहस्र जप करना अत्युत्तम है, शत-मन्त्रका जप मध्यम है, दश मन्त्रका जप तृतीय कोटिका अवर है, अपनी सामर्थ्य के अनुसार कमसे कम, दश वार या सौ वार या सहस्र वार गायत्रीका जप करनाही चाहिए। इस प्रकार जो विप्र गायत्रीका जप करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता है।' यह अत्रि स्मृतिका वचन है। ' पवित्र एवं दिव्य गायत्री की व्याख्या को जो पढता है, या जो सुनता है, वह मनुष्य समस्त पापोंसे छूटकर उत्तम ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है।' यह ब्रह्म वाक्य है।' ' जप करते हुएभी जपके मध्यमें गायत्री की व्याख्या अर्थात्-मन्त्रार्थकी भावना द्विजोंको मनसे करनी चाहिए, गायत्रीके अर्थ स्मरणसे भी समस्त-पापोंका विनाश होंजाता है, इसमें संशय नहीं है।' यह भारद्वाज-ऋषिका वचन है।

**' दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम् । सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति दुष्कृतम् ॥' ( बृ० पाराशर० सं. ५ । ६२ ) 'गायत्र्यास्तु परन्नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ।' (सम्बर्त. स्मृ. २१८ ) इत्यादीनि ।**

बृहत्पाराशर संहिता में कहा है—' दशवार गायत्री—मन्त्रके जपसे इस जन्मके पाप नष्ट हों जाते हैं, सौ वार जपनेसे पूर्व जन्मके भी पाप विनष्ट हो जाते हैं, और हजार वार मन्त्र जपनेसे तो तीनों जन्मोंके भी पाप—नष्ट हो जाते हैं।' संवर्त—स्मृतिमें भी कहा है

कि-गायत्री-मन्त्रके तुल्य पापोंका निवारक अन्य मन्त्र नहीं है, अर्थात् गायत्री-मन्त्र ही समस्त पापोंका नाशक अद्वितीय-ब्रह्मास्त्रके समान है। इत्यादि वचनोंसे गायत्री का जप समस्त पापोंका नाश करके द्विजको पवित्र बनाता है, ऐसा निश्चित होता है।

गायत्रीजपत ऐहिकामुष्मिकं सर्वमिष्टजातं पुण्यैश्वर्यस्वर्ग-ज्ञानमोक्षादिकं लभ्यते-इत्याहुः-श्रुतिस्मृतिप्रभृतिवचांसि-'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥' (अथर्व० १९। ७१। १) इति। अयमर्थः-स्वानुष्ठितगायत्रीमन्त्रजपेन मन्त्रद्रष्टा ऋषिः द्विजानां आयुरादीष्टफलमाशास्य तन्मध्यवर्तिनः स्वस्यापि प्रार्थनीयफलं सिद्धवदनुवदति-मया=सावित्रीं-गायत्रीं जपता स्तुता=अभि-ष्टुता-स्वभ्यस्ता, वरदा=इष्टकामसिद्धिप्रदात्री, पावमानी=पव-मानः पापात्तत्कारणाच्च परिशोधकः परमेश्वरः तत्प्रतिपादिका पावमानी, यद्वा स्वोपासकानां द्विजानां पावमानी=पावयित्री वेदस्य=ऋगादिरूपस्य माता सर्ववेदसारत्वेन मातृवत्प्रधानभूता सावित्री। द्विजानां=द्विजन्मनां ब्राह्मणादीनां आयुरादिफलानि प्रचोदयन्तां=पूजायां बहुवचनम्-प्रेरयतु-प्रयच्छतु। ब्रह्मवर्चसं =ब्राह्मं तेज इत्यर्थः। अथ मह्यं=स्तोत्रे-जापकाय सर्वेषां फल-प्रार्थकाय दत्त्वा=आयुरादिकं फलं वितीर्य, ब्रह्मलोकं=सत्यलोकं यद्वा ब्रह्मैव लोकः लोक्यमानं विद्वद्भिरनुभूयमानं परतत्त्वं व्रज-त=तत्र लयं प्राप्नुत इति। प्रत्यक्षवादोऽत्रापि पूर्ववत् पूजायां

**बहुवचनम् । शब्दावगम्यविशिष्टब्रह्माकारं साकाररूपं परित्यज्य वाङ्मनसातीतशुद्धब्रह्मार्थरूपा भवेति ।**

गायत्रीके जपसे इस लोक एवं परलोकके समग्र–अभीप्सित पुण्य ऐश्वर्य, स्वर्ग, सुख, ज्ञान एवं मोक्ष आदि अनायास ही प्राप्त होजाते हैं, यही बात श्रुति–स्मृति आदिके अनेक वचन भी कहते हैं–'वेदोंकी माता, द्विजोंको पवित्र बनाने वाली, वर देने वाली, गायत्रीकी मैं ने स्तुति की है, वह अपने उपासक द्विजोंको, आयुः, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रव्य एवं ब्रह्मतेज समपर्ण करे, और मुझको भी आयु-आदि इष्ट फल प्रदान करके ब्रह्मलोक में जावें।' इस मन्त्रका विस्तृत अर्थ इस प्रकार है। अपने द्वारा अनुष्ठित-गायत्री-मन्त्रके जपसे मन्त्रद्रष्टा–ऋषि द्विजातियों के लिए आयु आदि इष्ट–फलकी प्रार्थना करके उनके मध्यवर्ति अपने लिये भी उस प्रार्थनीय फलका सिद्धकी तरह अनुवाद करता है, गायत्रीका जप करनेवाले मैंने उसकी स्तुति की है, अर्थात् गायत्रीका बहुत अभ्यास किया है। वह वरदा है, अर्थात् इष्ट–कामनाओंकी सिद्धियों का दान करती है, वह पावमानी है, अर्थात् पापसे एवं उसके कारण (दोष) से परिशुद्ध करनेवाला परमात्मा पवमान है, उसकी प्रतिपादिका गायत्री पावमानी कहाती है। अथवा वह अपने उपासक द्विजोंको पवित्र करती है, इसलिए वह पावमानी है। वह ऋगादिरूप–वेदकी माता है, अर्थात् वह सर्व–वेदोंका साररूप होनेके कारण माताके समान प्रधानरूपा प्रशस्ता सावित्री है। द्विजन्मवाले–ब्राह्मणादि द्विजोंको वह आयु–आदि फलोंका प्रदान करे। ब्राह्मतेजको ब्रह्मवर्चस कहते हैं। और मैं जो गायत्रीकी स्तुति करता

हूं, तथा गायत्रीका जप करता हूं, तथा गायत्री मातासे सभीके लिए इष्ट फलोंकी प्रार्थना करता हूँ, उस मेरे लिए भी गायत्री माता आयु-आदि फल का दान करके ब्रह्मलोक अर्थात् सत्यलोकमें जावे। अथवा ब्रह्मलोक यानी ब्रह्म ही जो लोक है, लोक अर्थात् विद्वान्-तत्त्वदर्शियों के द्वारा अनुभूयमान परम तत्त्व, उसमें लयको प्राप्त होवे। शब्दसे जानने योग्य-विशिष्ट-ब्रह्माकार-साकार रूपका परित्याग करके, वाणी एवं मनसे अतीत-शुद्ध-ब्रह्मरूपा वह गायत्री माता हो, यही व्रजतका सारार्थ है। 'प्रचोदयन्तां एवं व्रजत' ये बहुवचन पूजा-सन्मान के लिये है। पूजाके लिए बहुवचनका प्रयोग प्रसिद्ध है।

**'ऐहिकामुष्मिकं सर्वं गायत्रीजपतो भवेत्'। ( इत्यग्निपुराणे ) जपनिष्ठो द्विजः श्रेष्ठोऽखिलयज्ञफलं लभेत्। सर्वेषामेव यज्ञानां जायतेऽसौ महाफलः ॥ ( तन्त्रसारे-३९ ) इति। 'योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम्। विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम् ॥' ( ओशनसस्मृ० २। ५२ ) इति। गायत्रीं संस्मरेद्योगात् स याति ब्रह्मणः पदम्। गायत्रीजपनिरतो मोक्षोपायश्च विन्दति॥' ( बृ. पाराशर स्मृ. ५। ७८ ) ( शंखस्मृ. १२। ३० ) इति। 'सावित्र्याश्चैव मन्त्रार्थं ज्ञात्वा चैव यथार्थतः। तस्यां यदुक्तं चोपास्य ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ इति ( योगी-याज्ञवल्क्यः )**

अग्नि-पुराणमें कहा है कि-'ऐहलौकिक-एवं पारलौकिक-समग्र इष्ट फलोंकी सिद्धि गायत्री-जपके द्वारा होती है।' तन्त्र-सार में भी कहा है-' जो द्विज प्रतिदिन गायत्री-माताका जप करता रहता

है वह श्रेष्ठ—प्रशंसनीय हो जाता है। गायत्री—जप निरत द्विज, सम्पूर्ण—यज्ञादियोंका फल अनायास ही प्राप्त कर लेता है, समस्त—यज्ञोंका महाफल पूर्ण—आनन्दनिधिरूप वह बन जाता है।, औशनस स्मृति में भी कहा है—'जो द्विज—ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करता हुआ प्रतिदिन वेद माता इस गायत्रीके अर्थको जानकर स्वाध्याय—जप करता रहता है, वह परमगति—मोक्षपदको प्राप्त हो जाता है।' वृहत्पराशर स्मृति में एवं शंखस्मृतिमें कहा है—'योगसे अर्थात् चित्त—निरोधके द्वारा जो गायत्रीका स्मरण करता है। वह ब्रह्म पदको प्राप्त कर लेता है। गायत्री जपमें रुचि—एवं निष्ठा रखनेवाला द्विज मोक्षका उपाय—तत्त्व-ज्ञानको प्राप्त करता है।' योगी याज्ञवल्क्यने भी कहा है—सावित्री (गायत्री) मन्त्र के अर्थको यथार्थ रूपसे जान करके तथा उस मन्त्र में भर्ग—ध्यान आदि जो कुछ कहा है उसकी उपासना करके वह साधक ब्रह्म—भाव प्राप्तिके लिए समर्थ हो जाता है।'

**'सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह। ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित्॥' (शङ्ख. स्मृ. ११।२) 'य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम्। तत्त्वेन भरत-श्रेष्ठ! स लोके न प्रणश्यति॥' (म० भा० भीष्म० १४। १६) 'एतदक्षरमेताञ्च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्। संध्ययोर्वेद-विद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥' (मनु० २। ७८) इति। ॐकारलक्षणमेतदक्षरं, एतां=त्रिपदां सावित्रीमित्यर्थः। वेदत्रयस्वाध्यायजन्यपुण्येन युक्तो भवतीत्यर्थः। 'ॐकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः। त्रिपदा चैव गायत्री विज्ञेयं**

ब्रह्मणो मुखम् ॥ '( मनु० २ । ८१ ) इति । ब्रह्मणः=वेदस्य, मुखं=आद्यं, तत्पूर्वकवेदाध्ययनारम्भात् । अथवा ब्रह्मणः=परमात्मनः, मुखं=प्राप्तेर्द्वारं, तदेतदध्ययनजपादिना निष्पापस्य ब्रह्मज्ञानप्रकर्षेण मोक्षावाप्तेः ।

शंखस्मृतिमें भी कहा है—' व्याहृति प्रणव एवं शिरोमन्त्र सहित जो गायत्रीका सदा जप करते हैं, उन्हें कहीं किसोसे भी भय नहीं होता, वे सदा सर्वत्र सर्वथा निर्भय हो जाते हैं । ' महाभारतके भीष्म पर्वमें भी कहा है—' जो द्विज इस परम पवित्र गायत्री का—जो कि निखिल—दिव्य गुणोंसे परिपूर्ण है—तत्त्वभावसे जानता है, या उसकी उपासना करता है; हे भरतश्रेष्ठ ! उसका लोकमें कदापि नाश नही होता, अर्थात् वह विनाशी—देह—भावका परित्याग करके नित्य—शुद्ध—बुद्ध—मुक्त—रूप—देव भावको प्राप्त कर लेता है, जिसका प्रणाश कदापि नहीं हो सकता । ' मनु महाराजने भी कहा है—' जो वेद-वेत्ता ब्राह्मण इस प्रणव अक्षरका तथा व्याहृति—पूर्वक त्रिपदा गायत्रीका प्रातः एवं सायं संध्यामें जप करता है, उसे निश्चितरूपसे वेद—त्रयके स्वाध्याय—जन्य—पुण्य—फल मिलता है । ' ॐकारपूर्वक—अव्ययरूप—तीन महाव्याहृतियां तथा त्रिपदा गायत्री ब्रह्मका मुख है ऐसा जानना चाहिए । ' यहां ब्रह्मका वेद अर्थ है, मुख यानी आद्य, अर्थात् प्रथम प्रणव व्याहृतिपूर्वक—गायत्रीका उपदेश दिया जाता है. तदनन्तर वेदाध्ययनका प्रारम्भ किया जाता है । अथवा ब्रह्मको अर्थ परमात्मा है, उसकी प्राप्तिका मुख यानी द्वार गायत्री मन्त्र है । गायत्रीके स्वाध्याय जप—ध्यान आदिके द्वारा मनुष्य निष्पाप—पवित्र बन जाता है,

और उसको ही ब्रह्मज्ञानका प्रकृष्ट रूपसे लाभ होता है, एवं उसके द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लेता है।'

**'योऽधीतेऽहन्यहन्येताँस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः। स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥' (मनु. २।८१) इति अतन्द्रितः=अनलसः, अहन्यहनि=प्रत्यहमित्यर्थः। वायुभूतः =वायुरिव, कामचारी भवति। खमूर्तिमान्=खं-ब्रह्म तदेवा-स्य मूर्तिरिति ब्रह्मैव सम्पद्यते।**

'जो द्विज प्रतिदिन जितेन्द्रिय, आलस्यरहित एवं उत्साहसम्पन्न होकर तीन वर्ष पर्यन्त गायत्रीका जप करता है, वह वायु देवताके समान कामचारी अर्थात् इच्छानुसार संचरणशील हो जाता है, और पर-ब्रह्मभावको प्राप्त कर लेता है, खमूर्तिमान् अर्थात्—खं ब्रह्म ही उसकी मूर्ति—स्वरूप यानी ब्रह्म ही हो जाता है।

**जपसाफल्यकारणान्याह—'मनःप्रहर्षणं शौचं मौनं मन्त्रा-र्थचिन्तनम्। अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः॥' इति ब्राह्मे। जपप्रकारमाह—'मनः संहृत्य विषयात् मन्त्रार्थगतमा-नसः। न द्रुतं न विलम्बञ्च जपेन्मौक्तिकपङ्क्तिवत्॥' जप-संख्या तु कर्तव्या नासंख्यातं जपेत्सुधीः।' इति**

अब गायत्री—जपकी सफलताके कारणोंका प्रदर्शन करते हैं—'मनकी प्रसन्नता, शरीर—इन्द्रियादिकोंकी पवित्रता, मौन (व्यर्थ वार्तालाप न करना या हित—मित—सत्य—प्रिय बोलना) मन्त्रार्थका चिन्तन, चित्तमें व्यग्रताका अभाव, अनिर्वेद—अर्थात् जपसे चित्तको

उपराम न बनाना, ये छः साधन जपकी सफलताके कारणरूप हैं। अर्थात् इन छः साधनोंके द्वारा सफल–जप सिद्ध हो जाता है।' यह ब्राह्म–पुराणमें कहा है। जप करनेका प्रकार ( तरीका ) यह है– 'शब्दादि विषयोंसे मनको हटा कर मन्त्र एवं उसके अर्थमें ही मन को लगाना चाहिए, जपमें जल्दबाजी या अधिक विलम्ब न करते हुए मोतियोंकी मालाके तुल्य निरवच्छिन्न–अविश्रान्त गतिसे जपकी धारा सतत चलती रहनी चाहिए।' जपसंख्या अवश्य करनी चाहिए, शोभन बुद्धिमान् संख्यारहित जप न करे।

**शौचं स्नानं च कृत्वा पवित्रे विविक्ते देशे आसनं बद्ध्वा मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा एकाग्रमनसा रुद्राक्षमालया सहस्रकृत्वो वा शतकृत्वो वा द्विजेनावश्यं प्रत्यहं सावित्रीजपः कर्तव्यः इत्याह–' सहस्रकृत्वः सावित्रीं जपेदव्यग्रमानसः। शतकृत्वोऽपि वा सम्यक् प्राणायामपरो यदि ॥ ' इति (योगी-याज्ञवल्क्यः )**

शौच–स्नानादि करके निर्जन–पवित्र स्थानमें आसन दृढ कर के मन्त्रन्यासादि–विधि–कृत्य करके एकाग्र मन होकर रुद्राक्ष की मालासे हजार या सौका हिसाव करके प्रतिदिन गायत्रीका जप द्विजको अवश्य ही करना चाहिये।' इस बातको महर्षि–याज्ञवल्क्यने इस प्रकार कहा है–' अव्यग्र–शान्त प्रसन्न–मन रख कर के गायत्री मन्त्रका हजार जप करना चाहिए, यदि प्राणायामकी विशेष अभिरुचि हो तो प्राणायाम के साथ सौ वार भी अच्छी प्रकारसे मन्त्र–जपना अच्छा है।

**गायत्र्याः स्वरूपं तन्महत्त्वञ्चाहुः–'तेजो वै गायत्री, तमः पाप्मा रात्रिस्तेन तेजसा तमः पाप्मानं तरन्तीति।' ( गो०**

ब्रा० ५ । ५ । ४ ) 'ब्रह्म गायत्रीति' ( शत० ब्रा० ६ । ६ । ६ । २ । ७ । ) 'गायत्री तद्ब्रह्मैव तदस्य सर्वस्यो- त्तमं करोति तस्माद् ब्रह्मास्य सर्वस्योत्तममित्याहुः ॥' ( श० ब्रा० १४ । ६ । २७ । २ ) 'गायत्री त्रिपदा देवी त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी । चतुर्विंशाक्षरा विद्या सा चैवाभीष्टदेवता ॥' ( रुद्रयामलपूर्वतन्त्रे–गायत्रीरहस्ये ) त्र्यक्षरी=ओङ्कारस्वरूपा इत्यर्थः । 'गायत्री सा महेशानी परब्रह्मात्मिका मता ।' इति ( रुद्रगायत्र्याम् ) 'गायत्री परदेवतेति गदिता ब्रह्मैव चिद्रू- पिणी ।' इति गायत्रीपुरश्चरणे । 'गायत्री वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किञ्च' ( छां. ३ । १२ । १ ) इत्यादि । इदं सर्वं भूतं=प्राणिजातं, यत्किञ्च=स्थावरजङ्गमं वा तत्सर्वं गायत्र्ये- वेत्यर्थः ।

गायत्रीके स्वरूप तथा उसके महत्त्वको महर्षिगण गोपथ–ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में कहते हैं–निश्चय से तेजः–ज्योतिरूपा ही गायत्री है, तमःअन्धकार ही पापरूपा रात्रि है, उस तेज से साधक द्विज पापरूप अन्धकारका अतिक्रमण करते हैं ।' 'ब्रह्म गायत्री है' 'जो गायत्री है, वही ब्रह्म है, उसकी जिसने जप–ध्यानादिके द्वारा ससुचित–उपासना किया, उसको गायत्री इस सबमें उत्तम (ब्रह्मरूप) कर देती है, क्योंकि–इस सर्वमें ब्रह्म ही एक मात्र–उत्तम है, ऐसा विद्वान् लोग तथ्य कहते हैं ।' रुद्रयामल–पूर्व तन्त्रमें तथा गायत्री रहस्यमें कहा है–' गायत्री त्रिपदा है, उसके तीन पाद प्रसिद्ध हैं, गायत्री ॐकाररू पा है, ॐकारमें अ, उ, म, ये तीन अक्षर हैं, अत

उसे त्र्यक्षरी देवी कहते हैं, वह चतुर्दश–भुवनों का ईशन (नियन्त्रण) करती है, अतः उसे भुवनेश्वरी कहा जाता है, चौवीस–अक्षररूपा–विद्या श्री गायत्रीदेवी भक्तोंको अभीष्ट फल–प्रदात्री महती देवता हैं।' 'वह गायत्री महेशानी एवं परब्रह्म स्वरूपा है, ऐसा महर्षियोंका मत है।' यह रुद्र गायत्री नामक ग्रन्थमें कहा है। 'परदेवता चित्-रूपिणी साक्षात् ब्रह्म ही गायत्रीदेवी कही गई है।' यह गायत्री–पुरश्चरण नामक ग्रन्थमें कहा है। छांदोग्य–श्रुतिने भी कहा है–'यह परिदृश्यमान समग्र प्राणि–समुदाय, और स्थावर–जंगम, सब कुछ गायत्री ही है, अर्थात् गायत्रीज्योति इस सबमें व्याप्त है।

**तस्याः महत्त्वं व्याख्यातं भगवत्पादैः शङ्करस्वामिभिस्तत्रैव–'गायत्रीद्वारेण चोच्यते ब्रह्म, ब्रह्मणः सर्वविशेषरहितस्य नेतिनेतीत्यादिविशेषप्रतिषेधगम्यस्य दुर्बोधत्वात्। सत्स्वनेकेषु छन्दःसु गायत्र्या एव ब्रह्मज्ञानद्वारतयोपादानं प्राधान्यात्। सोमाहरणात् इतरछन्दोऽक्षराहरणेनेतरछन्दोव्याप्त्या च सर्व-सवनव्यापकत्वाच्च यज्ञे प्राधान्यं गायत्र्याः। गायत्रीसारत्वाच्च ब्राह्मणस्य मातरमिव हित्वा गुरुतरां गायत्रीं ततोऽन्यद्गुरुतरं न प्रतिपद्यते यथोक्तं ब्रह्मापीति। तस्यामत्यन्तगौरवस्य प्रसिद्धत्वात्। अतो गायत्रीमुखेनैव ब्रह्मोच्यते।' (छां. ३। १२। १) इति**

भगवत्पाद श्रीशंकरस्वामीने छांदोग्योपनिषत् भाष्यमें गायत्रीके महत्त्वको इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–गायत्रीके द्वारा ही ब्रह्मका निरूपण किया जाता है। जाति–गुणादि समस्त विशेष रहित (नि-

विशेष ) नेति नेतिके द्वारा अशेष विशेषोंके प्रतिषेधसे जाननेयोग्य ब्रह्म-स्वतः दुर्विज्ञेय है। अतः वह गायत्रीसे जाना जा सकता है। मन्त्रोंके अनेक छन्द हैं, परन्तु गायत्री छन्दका ही प्रधानतया ब्रह्मज्ञानके द्वार रूपसे ग्रहण किया जाता है। अर्थात् ब्रह्मज्ञानोपयोगी प्रधानमन्त्र गायत्री ही है। सोमरसका आहरण करनेसे, साथमें इतर-छन्दोंके अक्षरोंका भी आहरण करनेसे, इतर-छन्दोंमें व्याप्ति होनेके कारण, तथा समस्त प्रातःसवनादि कर्मोंमें व्यापक होनेके कारण यज्ञमें गायत्री छन्दकी प्रधानता मानी जाती है। ब्राह्मण गायत्रीका साररूप है, अर्थात् जिसमें गायत्री-तत्त्व-सार निहित रहता है, वही सच्चा ब्राह्मण है। इस लिए माताके समान अत्यन्त-गुरुभूत-गायत्रीको छोडकर उससे अन्य अति-गुरुभूत साधन नहीं माना जाता है, अर्थात् माता-गायत्री से बढकर उत्तम-सिद्धिप्रद मन्त्र नहीं है, यही स्फुट ब्रह्म तत्त्वका प्रतिपादक मन्त्र है, इस लिए गायत्रीमें सर्वविध-गुण गरिमा प्रयुक्त-गौरव प्रसिद्ध है, अत एव गायत्रीमन्त्र द्वाराही ब्रह्मका निरूपण किया जाता है।'

बृहदारण्यके भाष्येऽपि-'गायत्र्युपाधिविशिष्टस्य ( ब्रह्मणः ) उपासनं वक्तव्यं....सर्वछन्दसां हि गायत्रीछन्दः प्रधानभूतम्... द्विजोत्तमस्य द्वितीयं जन्म गायत्रीनिमित्तं तस्मात्प्रधाना गायत्री....गायत्र्या हि यः सृष्टो द्विजोत्तमो निरङ्कुश एवोत्तमपुरुषार्थसाधनेऽधिक्रियतेऽतस्तन्मूलः पुरुषार्थसम्बन्धः।' ( बृ. ५। १४। १ ) 'सैषा गायत्री प्राणः, अतो गायत्र्यां जगत्प्रतिष्ठितम्। यस्मिन् प्राणे सर्वे देवा एकं भवन्ति। सर्वे वेदाः कर्माणि तत्फलं च, सैव गायत्री प्राण-

**रूपा सती जगत आत्मा, सा हैषा गयांस्तत्रे=त्रातवती, के पुनर्गयाः ? प्राणाः=वागादयो वै गयाः...गयत्राणाद्गायत्रीति प्रथिता। ' ( बृ. उ. ५ । १४ । ४ ) इति।**

ऐसाही भाव आचार्यने बृहदारण्यक भाष्यमें भी अभिव्यक्त किया है–गायत्री–रूप–उपाधिसे विशिष्ट ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिए, वेद के सभी छन्दोंमें गायत्री छन्द प्रधान है। द्विजोत्तम (ब्राह्मण)का द्वितीय जन्म गायत्री माताके द्वारा होता है, अर्थात् उपनयन संस्कारमें गायत्री –मन्त्र ग्रहण करके ब्राह्मण दूसरा जन्म धारण करता है, एवं वह द्विज कहलाता है। इसलिए भी गायत्री प्रधान है। गायत्री–माताके द्वारा निर्माण किया गया द्विजोत्तम निरङ्कुश अर्थात्–अन्य साधनकी अपेक्षा न करता हुआ ही उत्तम पुरुषार्थ–मोक्षके साधन तत्त्वज्ञानमें अधिकृत होता है, इस लिए गायत्री–मन्त्र मूलक ही पुरुषार्थ ( पुरुषके द्वारा अभिप्रेत अर्थ धर्मादिरूप ) का सम्बन्ध स्थापित होता है।' वही यह गायत्री प्राण है, अतः गायत्रीमें समग्र जगत् प्रतिष्ठित है। जिस प्राणमें समस्त देव, एक–अभिन्न हो जाते हैं, अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय का अधिदैव पृथक्–पृथक् प्रसिद्ध है, जैसे चक्षुका सूर्य, श्रोत्रका दिशा, त्वचाका वायु, रसनाका वरुण, घ्राणका अश्विनीकुमार, इत्यादि समग्र देवताओंकी एकता सर्वाधाररूप–प्राणमें होती है। इस प्रकार उसमें वेदोंकी, समग्र कर्मोंकी तथा समस्त–कर्मफलोंकी भी एकता हो जाती है। वही गायत्री प्राणरूपा हुई अखिल–जगत्की आत्मा है। यही आत्मरूपा गायत्री गयोंकी रक्षा करती है, गय किसे कहते हैं? वाक् चक्षु

आदि इन्द्रियोंको गय कहते हैं, गय संज्ञावली–इन्द्रियांका त्राण (रक्षण) करनेसे वह गायत्री इस नामसे प्रसिद्ध हुई है।

'प्रतिग्रहान्नदोषाच्च पातकादुपपातकात्। गायत्री प्रोच्यते तस्मात् गायन्तं त्रायते यतः ॥' ( या, स्मृ. ५। ४२ )' 'यथा च मधु पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः। एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सारमुच्यते ॥' ( वृ. यो. या. ४। १६ ) 'अकारं चाप्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः। वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितीति च ॥' (मनु. २। ७६ ) इति। निरदुहत्= उद्धृतवानित्यर्थः। 'त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥' तदिति-प्रतीकेनानूदितायाः सावित्र्याः ऋचः, पादं पादं=त्रीन् पादानित्यर्थः, ब्रह्मा, अदूदुहत्=निश्चकर्ष। इति। 'भूर्भुवःस्वरिति चैव चतुर्विंशाक्षरास्तथा। गायत्री चतुरो वेदाः ओङ्कारः सर्वमेव तु ॥' ( वृ. यो. या. २। ७९। )

याज्ञवल्क्य स्मृतिमें गायत्रीका स्वरूप इस प्रकार कहा है– प्रतिग्रहान्नदोषसे अर्थात् दूसरोंके पापादि–दोष निवृत्यर्थ किये हुए दानसे अन्नादि आहार द्वारा होनेवाले प्रमाद–आलस्यादि दोषोंसे, तथा पाप एवं उपपापसे गायत्रीदेवी अपना गान करनेवाले–भक्तकी रक्षा करती है, इसलिए वह गायत्री कही जाती है। योगी याज्ञवल्क्यने भी कहा है–' जैसे पुष्पों का सार मधु, दूधका सार घृत है, और रसका सार दूध है, उसी प्रकार समग्र–वेदोंका सार गायत्री है।' मनुस्मृतिमें भी कहा है–' प्रजापति ब्रह्माने तीनों वेदोंसे अकार उकार

एवं मकार ये प्रणवकी तीन मात्राएँ, और गायत्रीकी भूर्भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियां उद्धृत की हैं, अर्थात् वेदत्रयके साररूपसे उनको प्रकट किया है '' परमेष्ठी-प्रजापतिने तीन वेदोंसे 'तत्सवितुरित्यादि ऋचारूप गायत्रीके तीन पादोंको उद्धृत किया है । अर्थात् एक-एक वेदसे एक-एक पाद प्रकट किया है । ' योगी याज्ञवल्क्यने कहा है– 'भूर्भुवः स्वः ये व्याहृतियां तथा चौवीस अक्षरोंवाली गायत्री चार वेदरूप है, अर्थात् चारों वेदोंका सारभूत हैं, और ॐकार, व्याहृति गायत्री चार वेद आदि सर्वका साररूप है, सर्वमें ओतप्रोत है, इसलिए वह सर्वमय है ।

**'तदित्यृचः समो नास्ति मन्त्रो वेदचतुष्टये । सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च दानानि च तपांसि च । समानि कलया प्राहुर्मुनयो न तदित्यृचः ॥' इति विश्वामित्रः । 'अष्टादशसु विद्यासु मीमांसातिगरीयसी । ततोऽपि तर्कशास्त्राणि पुराणं तेभ्य एव च ॥ ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिर्द्विज! । ततोऽप्युपनिषच्छ्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका । दुर्लभा सर्वमन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता ॥' इति बृहत्सन्ध्याभाष्ये ।**

महर्षि विश्वामित्रने कहा है कि–'वेदकी सर्वोत्कृष्ट ऋचा गायत्री मन्त्र है, ऐसी उत्तम ऋचा चारों वेदोंमें दूसरी नहीं है, समस्त वेद, समस्त यज्ञ, समग्र दान एवं तप भी 'तत्सवितुरित्यादि–गायत्री–ऋचा की एक कलासे (सोलहवां भागसे) भी तुलना नहीं कर सकते हैं । ऐसा मुनिगण कहते हैं अर्थात् गायत्री–ऋचा, वेदादि से भी महान् उत्कृष्ट है । ' बृहत्संध्या भाष्यमें कहा है–' अठारह प्रकारकी विद्याएँ

होती हैं, उन सबोंमें मीमांसा ( कर्मकाण्डविचार ) अति-गुरुभूत ( गंभीर एवं कठिन होनेके कारण गौरवशाली ) मानी जाती है, और मीमांसासे भी तर्कशास्त्र अतिगौरवशाली (अधिकजटिल)माना जाता है, तर्कशास्त्रसे भी पुराण अधिक-गम्भीर माने जाते हैं, (क्यों-कि-पुराण समाधि भाषा आदि त्रिविध प्रकारसे वर्णित हैं ) पुराणों से भी धर्मशास्त्र अति गंभीर हैं, धर्मशास्त्रोंसे भी वेद-श्रुति स्वतः प्रमाण होनेके कारण अति गौरवशालिनी हैं, उन-श्रुतियोंसे भी उपनिषत्-विद्या श्रेष्ठ ( अति प्रशस्त ) मानी जाती है, और इन-उपनिषदोंसे भी गायत्री अधिक श्रेष्ठ है, समस्त मन्त्रोमें प्रणव संयुक्त-गायत्री दुर्लभ मानी गई है, अर्थात् सप्रणवा गायत्री, पूर्वोक्त-समस्त शास्त्रोंके रहस्यों को अपने गम्भीर-तम अर्थमें रखती है, इस लिए वह सर्वोत्तम-गौरवशाली मन्त्रके रूपमें विराजमान है।

'सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना। ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च॥' ( देवीभागवते ११। १६। १५ ) 'एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परन्तपः। सावित्र्यास्तु परन्नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते॥' (मनु. २। ८३) इति। एकाक्षरं=ॐकारः, परं ब्रह्म=परब्रह्मावाप्तिहेतुत्वात्। ओङ्कारस्य जपेन तदर्थस्य च परब्रह्मणो भावनया तदवाप्तेः। प्राणायामाः=सप्रणव-सव्याहृति-सशिरस्क-गायत्रीभिस्त्रिरा-वृत्तिभिः कृताश्चान्द्रायणादिभ्योऽपि परं तपः। प्राणायामाः इति बहुवचननिर्देशात् त्रयोऽवश्यं कर्तव्या इत्युक्तम्। सावित्र्याः प्रकृष्टमन्यन्मन्त्रजातं नास्ति। मौनादपि सत्या वाग्विशिष्यते इति।

देवी भागवतमें कहा है-' गायत्री सर्व वेद सारभूता है, उसकी सम्यक् अर्चना (पूजा) समस्त वेदोंकी पूजाके समान है। ब्रह्मा आदि देवता लोग भी प्रातः सायं संध्यामें उस गायत्रीका ध्यान करते हैं, एवं जप करते हैं। ' मनुने भी कहा है-' ॐ यह एक-अक्षर, पर ब्रह्मरूप है, अर्थात् वह परब्रह्मका प्रतीक एवं वाचक होनेके कारण ब्रह्मका प्रापक है, इस लिए वह ब्रह्म-बुद्धिसे उपासनीय है। ब्रह्म-भावनासे जपा हुआ प्रणव, ब्रह्म साक्षात्कारका कारण होता है। प्रणव-व्याहृति-शिरोमन्त्र सहित गायत्री-मन्त्रद्वारा किये गये प्राणायाम परं तपरूप माने जाते हैं, प्राणायामसे बढकर अन्य कोई तप नहीं है, क्योंकि-इससे मलोंकी शुद्धि एवं ज्ञानकी दीप्ति होती है। इस लिए कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि तपरूप व्रतोंसे भी प्राणायाम श्रेष्ठ तप माने गये है। सावित्री-मन्त्रसे उत्तम और कोई मन्त्र नहीं है, और मौनसे सत्य भाषण श्रेष्ठ माना जाता है। ' श्लोकमें 'प्राणायामाः' ऐसा बहुवचन के निर्देशसे-यह सूचित होता है कि-साधकको कमसे कम प्रतिदिन गायत्री-मन्त्र पूर्वक तीन प्राणायाम अवश्य ही करने चाहिए। '

**'सर्वेषां जपसूक्तानामृचाश्च यजुषां तथा। साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥' (बृ. परा. स्मृ. ४।४) 'गायत्री चैव वेदाश्च ब्रह्मणा तोलिता पुरा। वेदेभ्यश्च सहस्रेभ्यो गायत्र्यतिगरीयसी ॥' (बृ. परा. स्मृ. ५।१६) इत्यादीनि वचनानि।**

बृहत्पराशर स्मृतिमें कहा है-' वेदोंमें जपनीय अनेक सूक्त हैं, अनेकों ऋक् मन्त्र, यजुर्मन्त्र, एवं साममन्त्र हैं, तथा ॐकार आदि

अनेक अन्य मन्त्र भी हैं, परन्तु इन सभी सूक्तादिओंके जपकी अपेक्षा गायत्रीका जप परम-श्रेष्ठ माना गया है।'' 'एक आख्यायिका प्रसिद्ध है-एक समय ब्रह्माजीके द्वारा सब ऋषियोंने मिल कर तराजूमें गायत्री मन्त्रके साथ वेदके समस्त-मन्त्रोंको तोला गया, सबसे भारी गायत्री मन्त्र ही निकला, अर्थात सबसे अधिक महत्वशाली एवं अतिगौरवान्वित मन्त्र गायत्री ही है।' इत्यादि शास्त्रवचन गायत्रीके महत्वका घण्टाघोषसे निरूपण करते हैं।

**सकलशास्त्रविदपि यो गायत्रीमुपास्य तदर्थं स्वस्वरूपं ब्रह्मतत्त्वं न साक्षात्करोति चेत्तदा तस्य सर्वशास्त्राध्ययनज्ञानादिकं वृथा परिश्रममात्रं भाररूपमेवेत्याह-योगी याज्ञवल्क्यः-'साङ्गांश्च चतुरो वेदानधीत्यापि सवाङ्मयान्। सावित्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः॥' इति। विशेषतस्तत्त्वं पश्यतीति निरुक्तिमूलं मुख्यं तत्त्वदृष्टिलक्षणं विप्रत्वं सावित्र्युपासनाहीनो विप्रः सकलशास्त्रपाठकोऽपि नासादयितुं शक्नोतीत्याह पराशरः-'किं वेदैः पठितैः सर्वैः सेतिहासपुराणकैः। साङ्गैः सावित्रीहीनो यो न विप्रत्वमवाप्नुयात्॥' (बृ. पा. स्मृ. ५। १४) इति**

सकल शास्त्रोंका वेत्ता होने पर भी जो गायत्रीकी उपासना कर के उसका अर्थ-स्वस्वरूप ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार नहीं करता है यदि, तब उसका सर्वशास्त्रोंका अध्ययन-ज्ञान आदि व्यर्थ है, परिश्रम मात्र भाररूप ही है, यही बात योगी-याज्ञवल्क्य महर्षिने कहा है-'साङ्ग अर्थात् शिक्षा-व्याकरणादि छः अंगोसहित चारों वेदोंके-तोता

रटन्तके समान—शब्द समुदायका अध्ययन करके भी जो सावित्रीको नहीं जानता है, उसका समग्र परिश्रम वृथा हो जाता है। अत एव शास्त्रोंके अध्ययनको सार्थक करनेके लिए भी गायत्रीकी उपासना करना अनिवार्य है।' सावित्रीकी उपासनासे रहित, सकल शास्त्रोंका अध्यापक विप्र भी—विशेषरूप से जो तत्त्वका दर्शन करता है, वह विप्र है, इस व्युत्पत्तिमूलक—तत्त्वदृष्टि लक्षण वाले—मुख्य-विप्रत्व को प्राप्त करने के लिए समर्थ नहीं होसकता है, यह महर्षि पराशर ने भी कहा ह —'अङ्गसहित तथा इतिहास-पुराण-सहित-समग्र वेदों के पढने से भी क्या है? जो पण्डित-गायत्री-उपासना से हीन है, वह विप्रत्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।

तस्माच्छास्त्राध्ययनादेः साफल्याय गायत्र्युपासनाऽवश्यमेव कर्तव्या इति गायत्र्युपासनां विना ब्राह्मणस्य तु विशेषतोऽधःपातो भवतीत्याह—'गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता। यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥' ( देवीभागवते. १२।८।९ ) इति। तस्मादधःपातभयादपि ब्राह्मणेन गायत्री विधिवदुपासनीया इति। सकलशास्त्रमनधीयानोऽपि द्विजः केवलगायत्र्युपासनया मोक्षमवाप्तुं शक्नोतीत्याह—'गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्।' ( देवीभा. १२।८।९० ) इति। अतो मोक्षाप्तिलोभादपि द्विजेन गायत्री समाराध्या इति। सावित्रीमनुपास्य द्विजो विनिन्दितो भवति। निन्दितोऽसौ कथङ्कारं स्वाभ्युदयं लभेतेत्याह—मनुरपि —'एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया। ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥' ( २।

८०) इति । संध्यायामन्यत्र समये च ऋचा एतया सावित्र्या विसंयुक्तः=त्यक्तसावित्रीजपः, स्वकीयया क्रियया सायं प्रातर्होमादिरूपया स्वकाले त्यक्तो ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्योऽपि सज्जनेषु निन्दां गच्छति । तस्मात्स्वकाले सावित्रीजपं स्वक्रियां च न त्यजेदिति ।

इसलिए वेदादिशास्त्रों के अध्ययन आदि की सफलता करने के लिए गायत्री उपासना द्विजोंको अवश्य ही करनी चाहिए। गायत्री-उपासना के बिना ब्राह्मण का तो विशेषरूप से अधःपात होता है, यह देवीभागवत में कहा है—'गायत्री-उपासना प्रतिदिन नियमरूप से करनी चाहिए, यह चारों वेदों की आज्ञा है, इसके न करने से ब्राह्मण का सर्वथा-अधःपतन हो जाता है।' इसलिये अधःपात के भय से भी ब्राह्मण को विधिवत् गायत्री की उपासना अवश्य करनी चाहिए। सकल वेदादि शास्त्रों का जिसने अध्ययन नहीं भी किया है, तथापि वह द्विज केवल-गायत्री की उपासना से मोक्ष-प्राप्त करने के लिए समर्थ हो जाता है, यह भी देवी भागवत में कहा है—'जो द्विज केवल गायत्री-जप-परायण रहता है, उसका मोक्ष होना सुनिश्चित है।' अतः मोक्षप्राप्ति के लोभ से भी द्विजको गायत्री की आराधना करनी चाहिए। गायत्री की उपासना न करके द्विज निन्दनीय होता है, शास्त्र एवं शिष्ट—पुरुष के द्वारा निन्दित हुआ वह अपने अभ्युदय को कैसे प्राप्त कर सकता है? यह मनुमहाराज भी कहते हैं—'संध्या-समय में या अन्य समय में इस गायत्री-ऋचा से जो रहित है, अर्थात् जिसने सर्वथा सावित्री-मन्त्र जप का परित्याग कर दिया है, और अपनी-सायं-प्रातर्होमादिरूप क्रिया का भी त्याग किया है, वह द्विज अर्थात्

ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य, शिष्ट-पुरुषों में निन्दनीय हो जाता है, इस-लिए द्विज कदापि अपने समय में सावित्री-जप का एवं होमादि क्रिया का परित्याग न करे।'

गायत्रीजपतदर्थध्यानाभ्यासनियमादेव हि विश्ववंद्यं ब्राह्मण्यं लब्धुं शक्येत। नान्यथा वेदशास्त्रपठनादिनेत्याह–'न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्रपठनादपि। देव्यास्त्रिकालमभ्या-साद् ब्राह्मणः स्याद् द्विजोऽन्यथा॥' इति बृहत्सन्ध्याभाष्ये। त्रिव्याहृतियुतां देवीमोंकारयुगसम्पुटाम्। उपास्य चतुरो वर्गान् साधयेद्यो न सोऽन्धधीः॥ इत्ययं पुरुषार्थचतुष्टयसा-धकगायत्र्युपासनाद्विहीनं द्विजजनमन्धत्वकथनेन निन्दति।

गायत्री-जप के एवं तदर्थ-ब्रह्म-ध्यान के अभ्यासनियम से ही विश्व-वन्दनीय ब्राह्मणत्व का लाभ प्राप्त करने के लिए द्विज शक्तिमान् होता है। अन्यथा अर्थात्-वेदादिशास्त्रों के पठन आदि-अन्य प्रकार से ब्राह्मण्य प्राप्त नहीं होता, यही बात बृहत्संध्याभाष्य में कही है —'वेदपाठमात्र से या शास्त्र-पठनमात्र से भी ब्राह्मण नहीं होता, किन्तु प्रातः मध्याह्न,एवं सायं गायत्री देवी की प्रतिदिन आराधना करने से ही ब्राह्मण होता है, अन्यथा वह द्विज कहा जाता है।' 'त्रि-व्याहृति युक्त प्रणवयुग (चार ॐकार) से सम्पुटित-गायत्री माताकी उपासना करके जो द्विज धर्म-अर्थ काम एवं मोक्षरूप-चार वर्गों को सिद्ध नहीं करता है, वह अन्ध-बुद्धि वाला है, अर्थात् गायत्री की उपासना द्वारा पुरुषार्थ-चतुष्टय को सिद्ध करने वाले ही द्विज की बुद्धि–ब्रह्म-निरीक्षण समर्थ-प्रकाशयुक्त है, अन्य सब अन्धे हैं।' इसप्रकार यह श्लोक पुरु-

र्थ-चतुष्टय की साधिका गायत्री-उपासना से वर्जित-द्विजजन की अन्धत्व के कथन से निन्दा करता है।

गायत्रीमुपेक्ष्य द्विजोऽन्यमन्त्रोपासनया कदापि क्वापि न स्वाभीप्सितं फलमवाप्तुं शक्नुयादित्याह-'गायत्रीं यः परित्यज्य चान्यमन्त्रमुपासते। न साफल्यमवाप्नोति कल्पकोटिशतैरपि॥' इति बृहत्संध्याभाष्ये। तस्माद् द्विजेन गायत्रीमन्त्रो न कदाऽप्युपेक्षणीय इति। एष एव मन्त्रो द्विजत्वसम्पादकोपनयनसंस्कारे-आचार्येणोपदिश्यमानो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां परमो गुरुमन्त्र इत्युच्यते।

गायत्री-मन्त्र की उपेक्षा करके द्विज अन्य-मन्त्रों की उपासना से कदापि कहीं भी अपने- अभीप्सित-फल को प्राप्त करने के लिए समर्थ नहीं हो सकता है, यह बृहत्संध्याभाष्य में कहा है—'गायत्री का परित्याग करके जो द्विज अन्य—मन्त्र की उपासना करता है, वह शत-कोटि-कल्पों से भी सफलता को प्राप्त नहीं होता है।' इसलिये द्विजको कदापि गायत्री—मन्त्रकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, किन्तु प्रतिदिन श्रद्धा एवं एकाग्रतापूर्वक एकान्त स्थानमें अवस्थित होकर गायत्री—मन्त्रकी आराधना करनी चाहिए।' यही गायत्री—मन्त्र ब्राह्मण—क्षत्रिय एवं वैश्यरूप द्विजातियोंका श्रेष्ठ गुरुमन्त्र है, उपनयन संस्कारके समय यही मन्त्र आचार्यके द्वारा उपदिष्ट होता है, इस मन्त्रके प्रभावसे ही द्विजत्वका सम्पादन होता है, अर्थात् द्विजत्व लाभ करानेका गौरव इसी मन्त्रको प्राप्त है।

अत एव सूर्यवंशीयाश्चन्द्रवंशीयाश्च सर्वे क्षत्रिया अपि इममेव गायत्रीमन्त्रं शुचयो भूत्वा नित्यं जपन्ति स्मेत्याह-

भारतेऽनुशासने युधिष्ठिरं प्रति भीष्मः–'सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा। पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्रीं परमां गतिम् ॥' (म. भा. अनु. प. १५० । ७८ ) इति। अत एव मर्यादापुरुषोत्तमपूर्णपुरुषोत्तमौ क्षत्रियावतारलीलां भजमानौ भगवन्तौ श्रीरामकृष्णचन्द्रावपि लोकं संग्रहीतुं नियमतः सन्ध्योपासनागायत्रीमन्त्रजपध्यानादिकं कुर्वन्तौ वाल्मीकीयरामायणभारतादौ महर्षिभिरपि वर्ण्येते इति। तच्चरितपरिशीलनपराणां नातिरोहितम्।

अत एव सूर्य एवं चंद्रवंशीय–रघुकुलवाले तथा कुरुकुलवाले समग्र क्षत्रिय लोग भी इसी ही गायत्री–मन्त्रको पवित्र होकर सदा जप करते थे। यही वृत्तान्त महाभारतके अनुशासन पर्वमें युधिष्ठिरके प्रति भीष्म–पितामह ने कहा है–' सूर्यवंशी चंद्रवंशी, रघु–एवं कुरु कुलवाले सभी क्षत्रिय पवित्र होकर हमेशा गायत्रीकी उपासना करते हैं, सावित्री ही परमगति–प्रदान करती है।' इसलिए क्षत्रियके अवतारकी लीला करनेवाले मर्यादा–पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम, तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, भी लोक–संग्रह करनेके लिए नियमपूर्वक संध्या–उपासना गायत्री–मन्त्रका जप–ध्यान आदि करते थे, ऐसा व्यास–वाल्मीकि–आदि महर्षियोने वाल्मीकीय रामायण–महाभारत आदि ग्रन्थोंमें स्पष्टरूपसे वर्णन किया है, उन ग्रन्थोंके द्वारा भगवान्के दिव्य–चरित्रके परिशीलन करनेवाले–सज्जनोंके लिए यह बात छिपी नहीं है, अर्थात् भारत–रामायणादि–ग्रन्थों के स्वाध्याय शील–विद्वान् उक्त बातोंको स्पष्ट जानते हैं, अतः वहाँके प्रमाण लिखनेकी यहाँ जरूरत नहीं है।

अत एवाप्ययदीक्षितैः पण्डितप्रवरैरपि शिवतत्त्वविवेके द्विजानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां गायत्र्येव परमा गतिः, तया च सदाशिवः परात्परो ज्योतिर्मयः परब्रह्मैव सदा ध्येयः इत्यभिधीयते–'द्विजानां गायत्री खलु परमुपास्या नियमिता, प्रसिद्धं तस्याश्च त्वमसि परमं दैवतमिति । अकुर्वाणस्यातस्तव चरणसेवां द्विजपशोः, अवस्त्रोऽलङ्कारस्सकलमपि सत्कर्मचरितम् ।। त्रैवर्णिकानां सर्वेषां गायत्री परमा गतिः । कर्मान्तरेष्वशक्तोऽपि तयैव लभते गतिम् ।। तां विनाऽन्यानि कर्माणि निष्फलानि कृतान्यपि । अस्मिन्नर्थे न कस्यापि वैदिकस्य विसंमतिः ।।

अत एव इस सिद्धान्तको लक्ष्यमें रखते हुए पण्डित–प्रवर अप्यय दीक्षितने भी शिव–तत्त्व विवेकमें कहा है–ब्राह्मण–क्षत्रिय एवं वैश्यरूप द्विजोंके लिए गायत्री ही परम (अनन्य) गति है,और गायत्रीकी उपासनाके द्वारा परात्पर ज्योतिर्मय–परब्रह्म सदाशिव–भगवान्‌ही सदा ध्यान करनेयोग्य हैं, 'द्विजोंके लिए नियमपूर्वक एकमात्र गायत्री की उपासना करनी चाहिए, ऐसा वेदादि–शास्त्रोंका आदेश है, और हे प्रभो ! सदाशिव ! उस गायत्रीकी प्रसिद्ध परम देवता आपही हैं, गायत्री मन्त्रके द्वारा आपकी चरण–सेवा नहीं करनेवाले–द्विज पशुका समस्त सत्कर्म एवं सच्चरित्र भी वस्त्ररहित–अलंकारके समान शोभारहित एवं भाररूप माना जाता है ।' 'समस्त–त्रैवर्णिकोंकी गायत्री ही उत्कृष्ट–अनन्य गति है, अन्य–यज्ञादि कर्म करनेकी सामर्थ्य एवं रुचि न रहने पर भी द्विज केवल गायत्री मात्र से ही मोक्ष–गतिको प्राप्त कर सकता है ।

'गायत्री उपासना के विना अन्य किये हुए यागादि कर्म भी निष्फल हो जाते हैं', इस अर्थमें किसी भी वैदिक-मतानुयायी-आस्तिक की विसंमति (विरुद्ध-सम्मति-विवाद) नहीं हो सकती है, अर्थात् सम्पूर्ण-वैदिक-विद्वानों की एक ही राय है।

गायत्रीमात्रमाश्रित्य द्विजो भवति निर्भयः। गायत्रीहीनवेदास्तु साङ्गा अपि च निष्फलाः॥ इत्यादिस्मृतिवाक्यानामैकमत्यस्य दर्शनात्। अमुष्याः प्रतिपाद्या च देवता श्रीसदाशिवः॥ असाधारणतत्रत्यभर्गशब्देन निश्चितः। यदेष रुद्रो भर्गाख्यो ब्रह्मवादिन इत्यदः॥ एष देवो महादेवः केवलः परमश्शिवः। तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम्॥ देवस्य सवितुर्मध्ये यो भर्गो नो धियः क्रमात्। प्रचोदयात्तद्वरेण्यं धीमहीत्यन्वयः क्रमः॥ इत्यसौ याज्ञवल्क्येन सर्वशास्त्रार्थवेदिना। स्वनिर्मिते योगशास्त्रे दर्शितो मुनिनाऽन्वयः॥ वेदनिष्ठैः सदा कार्यं गायत्र्या शिवचिन्तनम्। ध्यानप्रधानमेवैतत्सन्ध्याकर्म यतः श्रुतम्॥ यस्तु श्रीपार्वतीनाथपदाम्भोजपराङ्मुखः। वैदिकं मार्गमास्थाय तत्कर्माण्यनुतिष्ठति॥ न तस्य तानि कस्यैचित् कल्पन्ते फलसिद्धये। परिधानविहीनानि मण्डनानि नृणामिव॥ यतस्तानि वितन्यन्ते विना गायत्र्युपासनम्। शिवोपास्तिविहीनैस्तैरिति तात्पर्यसंग्रहः॥'

गायत्री मात्रका आश्रय करके द्विज निर्भय हो जाता है, गायत्रीके विना सांग-चारों वेदोंका अध्ययन भी निष्फल है। इत्यादि-स्मृति वाक्योंकी इस सम्बन्धमें एकमति ही देखी जाती है। इस गायत्री

मन्त्रका प्रतिपाद्य-देवता श्री सदाशिव है, यह गायत्री मन्त्र-स्थित असाधारण अर्थबोधक-भर्ग शब्दसे निश्चित है। भर्ग शब्दका वाच्यार्थ यह रुद्र ही ब्रह्म है, यही महादेव है, यही केवल परम शिव है, उसी को ही ब्रह्मवादी-तत्त्वदर्शी विद्वान् अक्षर अद्वैत कहते हैं, वही सविता देवके मध्यमें भर्ग-दिव्य तेजरूप है, वह हमारी बुद्धि-वृत्तियोंको शुभ-प्रेरणा करे, वही वरेण्य भर्गका हम ध्यान करते हैं। ऐसा मन्त्रान्वय का क्रम समझना चाहिए। सर्वशास्त्रनिष्णात-याज्ञवल्क्य महर्षिने अपने बनाये हुए-योगशास्त्रमें यह अर्थ क्रम का अन्वय उक्त रूपमें दिखलाया है। वेदनिष्ठ ( वेदोंमें विश्वास रखनेवाले ) द्विजातियोंको गायत्री-मन्त्रके द्वारा सदाशिव भगवान्का चिन्तन करना चाहिए। अथवा गायत्रीका कल्याणकारक चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि-यह संध्या कर्म (जिसमें गायत्रीका जप ध्यानादि किया जाता है) ध्यान-प्रधान ही सुना गया है। जो त्रैवर्णिक द्विज-श्रीपार्वतीनाथ सदाशिव महादेवके चरण कमलसे पराङ्मुख होकर वैदिक-मार्गका अवलम्बन करके वैदिक कर्मो का अनुष्ठान करता है, परन्तु उसके वे वैदिककर्म, किसीभी फल-सिद्धिके लिए समर्थ नहीं हो सकते हैं। जैसे कोई कमअक्लका मनुष्य नग्न होकर कङ्कण-हार केयूरादि-आभूषणोंको धारण करे, तो वह शोभित नहीं होता, वस्त्रविहीन वे आभूषण केवल भाररूप माने जाते हैं, तद्वत् शिव उपासना से विहीन मनुष्योंके द्वारा गायत्री-उपासनाको छोडकर वे वैदिककर्म निष्फल ही किये जाते हैं, अर्थात् जैसे वस्त्र पहिन कर आभूषण धारण करना उचित है, उसी प्रकार गायत्री-मन्त्रके द्वारा सदाशिव भगवान्की उपासना करते हुए ही अन्य वैदिक कर्मोंका

अनुष्ठान करना योग्य है। गायत्रीकी उपासना ही शिव-की उपासना है, कल्याण मार्गके पथिकोंको अवश्य ही यह गायत्री-उपासना करनी चाहिए।'÷

भक्तभावनामनुसृत्याव्याजकरुणासुधापूरपूरितायाः स्व-जपध्यानपरायणाभीष्टफलदाया मन्त्रमय्या भगवत्या गायत्र्याः क्वचित् शुद्धब्रह्मलक्षणं निर्गुणं निराकारं, क्वचिच्च विराट्-लक्षणं सर्वाकारं, क्वचिच्च महातिशयसौन्दर्यलावण्यशोभमानं मातृलक्षणं साकारं स्वरूपं भजतां भक्तानां हृदये प्रादुर्भवति। अत एवाहुः- 'गायत्री तु परं तत्त्वं गायत्री परमा गतिः।' (बृ. परा- ५। ४) 'गायत्र्येव परो विष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः। गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी यतः॥' (बृह-त्सन्ध्याभाष्ये) इति। देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्व-मिदं जगत्। देवी जयति सर्वत्र या देवी साऽहमेव च॥ सर्वात्मना हि सा देवी सर्वभूतेषु संस्थिता। गायत्रीमोक्षहेतुर्वै मोक्षस्थानमलक्षणम्॥' इति च (ऋषिशृङ्गः) 'परब्रह्मस्वरूपा च निर्गुणपददायिनी। ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता॥' (देवीभा. ९। १। ४२) इति।

भावुक-भक्तोंकी भावनाका अनुसरण करके-अव्याज (किसी प्रकारकी बहाना बाजीके विना, किसी प्रकारकी हिचकिचाहट किये विना)

---

÷ यह अप्पय दीक्षितका मत है, वस्तुतः अद्वैतसिद्धान्तमें सदाशिव ही महाविष्णु है, शिव विष्णुका भेद माना नहीं जाता। एक ही परम तत्त्वका विभिन्न-स्वाभीष्ट-नामों से वर्णन किया जाता है।

करुणा—अमृतके पूर ( प्रचण्ड—प्रवाह ) से पूरिता ( भरपूरा ) अपने जप एवं ध्यानके परायण—रहनेवाले भक्तों को अभीष्ट फल देनेवाली—मन्त्रमयी—भगवती गायत्री—माता, अपने शरणमें रहनेवाले प्रिय पुत्र तुल्य भक्तोंको कभी कहीं शुद्ध—ब्रह्म निर्गुण—निराकाररूपसे, और कभी कहीं सर्वाकार—विश्व—विराट्रूपसे, और कभी कहीं महान्—अतिशयित सौन्दर्य—लावण्यसे सुशोभित—जननी माताके साकार स्वरूपसे भजन करनेवाले—भक्तोंके हृदयमें प्रादुर्भूत होती है।' इस लिए शास्त्रकार महर्षि कहते हैं कि—' गायत्री—परम तत्त्व अद्वैत—ब्रह्मरूप है, गायत्री ही परम गति है। ' यह बृहत् पराशर—ऋषिका वचन है। ' गायत्री ही महा-विष्णु—महाशिव, एवं महाब्रह्मारूप है, क्योंकि—गायत्री ही वेदत्रयी है, इस लिए उसके अधिष्ठाता त्रिदेवस्वरूप है । यह बृहत्संध्याभाष्यका वचन है। ' गायत्रीदेवी ही विविध—भोगोंको देती है, और वही उन भोगोंको उन—उन शरीरोंमें शक्तिरूपा होकर भोगती है, वह देवी ही यह समस्त जगत् है, समस्त विश्वमें व्याप्त है, देवी ही सर्वत्र विजयी होती है, जो देवी है, वही मैं हूँ, चैतन्य—पूर्ण शक्ति ही मेरा स्वरूप है।' ' समस्तोंके आत्मारूपसे वह देवी ही सर्वभूतों में सम्यक् अवस्थित है, गायत्री ही मोक्षका हेतु है, मोक्षका स्थान, लक्षणरहित है, अर्थात् सर्व द्वैत—प्रपञ्चके बाधसे परिशिष्ट—पूर्ण—अद्वय आनन्द स्वरूप ही लक्षण—वर्जित मोक्ष स्थान है । यह ऋष्य—शृङ्ग—मुनिका वचन है। देवी भागवतमें कहा है—' गायत्री—मन्त्रकी अधिष्ठातृ—देवता निर्गुण—पद—दायिनी, ब्रह्मतेजोमयी परब्रह्मस्वरूपा शक्ति है।

**ॐ नमस्ते देवि! गायत्रि! सावित्रि! त्रिपदेऽक्षरे!**

अजरे ! अमरे ! मातस्त्राहि मां भवसागरात् ॥ नमस्ते सूर्य-संकाशे ! सूर्यसावित्रिकेऽमले ! ॥ ब्रह्मविद्ये ! महाविद्ये ! वेद-मातर्नमोऽस्तु ते । अनन्तकोटिब्रह्माण्डव्यापिनि! ब्रह्मचारिणि !॥ नित्यानन्दे ! महामाये ! परेशानि ! नमोऽस्तु ते ॥ त्वं ब्रह्मा त्वं हरिः साक्षात् रुद्रस्त्वं चन्द्रदेवता ॥ मित्रस्त्वं वरुणस्त्वं च त्वमग्निरश्विनौ भगः ॥ पूषाऽर्यमा मरुत्वांश्च ऋषयोऽपि मुनीश्वराः । पितरो नागयक्षाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ रक्षो-भूतपिशाचाश्च त्वमेव परमेश्वरि ! ॥ ऋग्यजुःसामवेदाश्च अथ-र्वाङ्गिरसानि च । त्वमेव पञ्चभूतानि तत्त्वानि जगदीश्वरि ! ॥ ब्राह्मी सरस्वती सन्ध्या तुरीया त्वं महेश्वरी । त्वमेव सर्व-शास्त्राणि त्वमेव सर्वसंहिताः ॥ पुराणानि च तन्त्राणि महा-गममतानि च । तत्सद्ब्रह्मस्वरूपा त्वं किञ्चित्सदसदात्मिका ॥ परात्परेशी गायत्री नमस्ते मातरम्बिके ! । चन्द्रे ! कला-त्मिके ! नित्ये ! कालरात्रि ! स्वधे ! स्वरे ! ॥ स्वाहाकारे! अग्निवक्त्रे ! त्वां नमामि जगदीश्वरि ! । नमो नमस्ते गायत्रि ! साबित्रि ! त्वां नमाम्यहम् । सरस्वति ! नमस्तुभ्यं तुरीये ! ब्रह्मरूपिणि ! ॥' इति ॥ ( वसिष्ठसंहितायाम् )

वसिष्ठसंहितामें गायत्रीकी इसप्रकार स्तुति की है—हे देवी गायत्री हे सावित्री ! हे त्रिपदस्वरूपा, हे अक्षर ॐ स्वरूपा, हे अजर—अमरस्वरूपा तुझको नमस्कार है, हे माता भवसागरसे मेरी रक्षा कर । हे सूर्यके सदृश तेजस्विनी, हे सूर्यकी सावित्री शक्तिरूपा, अथवा हे सूर्यका भी प्रसव (उत्पत्ति) करनेवाली! हे निर्मले ! तुझको नमस्कार

है, हे ब्रह्मविद्ये ! हे महाविद्ये, हे वेदमाता, तुझे नमस्कार है, नमस्कार है। हे अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डोमें व्याप्त रहनेवाली ! हे ब्रह्मचारिणी ! हे नित्यानन्दस्वरूपे ? हे महामाये ! हे परेशानि ! तुझको नमस्कार हो ! तू ब्रह्मा है, तू हरि है, तू ही साक्षात् रुद्र-शिव है और तू ही इन्द्र देवता है। तूही मित्र, वरुण, अग्नि, अश्विनीकुमार, भग, पूषा, अर्यमा मरुत्वान् आदि देवरूपा है, ऋषिगण, मुनीश्वर, पितर, नाग-यक्ष, गंधर्व एवं अप्सराओंका गण भी तूही है, राक्षस, भूत एवं पिशाच भी हे परमेश्वरी ! तू ही है। ऋक्, यजु एवं सामवेद तथा अथर्वाङ्गिरस मन्त्र भी तू ही है, हे जगदीश्वरी ! तू ही पञ्चभूतात्मक तत्त्व है, तूही ब्राह्मी-शक्ति-सरस्वती है, तूहीं सन्ध्या, तुरीया एवं माहेश्वरी है, तूही समस्त-शास्त्र है, तूही समग्र संहिता है, तूही पुराण है, महागमके संमत तन्त्र तूही है, तत्-सत्-ब्रह्म स्वरूपा भी तूही है, सत्-असत् रूप जो कुछ मूर्त-अमूर्त प्रपञ्च है वह भी तूही है, हे परात्पर-ईश-रूपा ! हे अम्बिके ! गायत्री माता तुझको नमस्कार है। हे कलात्मक-चन्द्ररूपिणी ! हे नित्ये, हे कालरात्रीरूपे ! हे स्वधा एवं स्वररूपे हे स्वाहाकाररूपे ! हे अग्निरूप-मुखवाली ! हे जगदीश्वरी मैं तुझको नमस्कार करता हूं। हे गायत्री तुझे नमस्कार है, नमस्कार है, हे सावित्री मैं तुझको नमस्कार करता हूँ, हे सरस्वती ! हे तुरीय-ब्रह्म-स्वरूपिणी तुझे नमस्कार है।' इसमे अनेक सम्बोधनों के द्वारा गायत्री की विशिष्ट-स्तुतिपूर्वक वारंवार वंदना की गई है, साथमें गायत्रीदेवीको अद्भुत-प्रशस्त महिमा भी बतलाई गई है।

**वाजसनेयकशतपथब्राह्मणोक्तगायत्र्युपस्थानमन्त्रोऽपि**

तत्स्वरूपमाह—'तस्या उपस्थानं, गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे। नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति।' (बृ. ५।१४।७) इति। अस्यायमर्थः—तस्याः=गायत्र्याः उपस्थानं=उपेत्य स्थानं—नमस्करणमनेन मन्त्रेण कर्तव्यमिति यावत्। कोऽसौ मन्त्र इत्याह—हे गायत्रि! त्वं त्रैलोक्यपादेन एकपदी असि=भवसि। त्रयीविद्यारूपेण द्वितीयेन पादेन द्विपदी त्वं भवसि। प्राणादिना तृतीयेन पादेन त्रिपदी असि। सूर्यमण्डलान्तर्गत-पुरुषलक्षणेन पादेन त्वं चतुष्पदी असि। एवमेतैश्चतुर्भिः पादैस्त्वमुपासकैः पद्यसे=ज्ञायसे। अतः परं परेण=निरुपाधिकेन स्वेनाऽऽत्मना हे गायत्रि! त्वमपदसि, पद्यते येन तत्पदं न विद्यते पदं यस्याः सा। कुतो हि यस्मात् केनापि न पद्यसे=न ज्ञायसे? नेति नेत्यादिलक्षणत्वात्। अतः शास्त्रीयव्यवहार-विषयाय नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसे नमस्कारोऽस्तु। मण्डलान्तर्गतः पुरुषो हि यस्मात् ददृशे इव, न तु साक्षात् दृश्यते। ईश्वरस्यातीन्द्रियत्वादतो दर्शतं पदमित्युच्यते। सर्वमेव रजो=रजोजातं कामात्मकं लोकात्मकं वा उपर्युपरि हि यस्मादेष सविता तपन्वर्ततेऽतो रजसः पर इति परोरजा उच्यते। तत्प्रयोजनमाह—असाविति। असौ शत्रुः पाप्मा त्वत्प्राप्तिविघ्न-करोऽदःपापरूपस्य शत्रोर्यत्त्वत्प्राप्तिविघ्नकर्तृत्वं तच्च मम मा प्रापत्—मा प्राप्नोतु। इतिशब्दः पापक्षयफलोपस्थानमन्त्रपरि-समाप्त्यर्थः।

वाजसनेयक-शतपथ ब्राह्मणमें प्रतिपादित गायत्रीका उपस्थान मन्त्र भी गायत्री-स्वरूपको अभिव्यक्त करता है-' गायत्रीका उपस्थान अर्थात् जिसके द्वारा नमस्कार किया जाता है, वह उपस्थान मन्त्र कहा जाता है। वह ' गायत्र्यस्येकपदी ' इत्यादि रूप है। हे गायत्रि! तू भूरादि त्रैलोक्यरूपपादके द्वारा एक-पादवाली है, वेदत्रयी-विद्यारूप द्वितीय पादसे तू दो पादवाली है, प्राणादिरूप-तृतीय पादके द्वारा तू त्रिपदी है, सूर्य-मण्डलके अन्तर्गत-पुरुषरूप पादसे तू चतुष्पदी है। इस प्रकारके इन चार पादोंके द्वारा तू श्रद्धालु-उपासकोंसे जानी जाती है।× वस्तुतः हे गायित्रि! तू पर-निरूपाधिक-

×अथवा कुछ विद्वान् गायत्रीके चार पादोंका इस प्रकार वर्णन करते हैं-' ॐ भूः तत्सवितुर्वरेण्यम् ' यह प्रथम पाद है, इससे वह एकपदी है, ॐ भुवो भर्गो देवस्य धीमहि ' यह द्वितीय पाद है, इससे वह द्विपदी है, ' ॐ स्वर्धियो यो नः प्रचोदयात् ' यह तृतीय पाद है, इससे वह त्रिपदी है, ॐ परो रजसेऽसावदोम् ' यह चतुर्थपाद है, इससे वह चतुष्पदी है। ॐ मन्त्रमें जिस प्रकार अ, उ, म एवं अर्धमात्रा रूप चार मात्राओंकी कल्पना की जाती है, अथवा जाग्रत्-स्वप्न सुषुप्ति एवं तुरीय-अवस्थाके भेदसे एक ही आत्माके विश्व, तैजस प्राज्ञ एवं तुरीय रूप चार पादोंकी कल्पना, अवबोध या चिन्तनके लिए की गई है, तद्वत् प्रकृतमें भी गायत्रीके इस प्रकारके चार पादोंकी कल्पना, अवबोध या चिन्तनके लिए की गई है, वस्तुतः जप तो-संमिलित-त्रिपदा गायत्रीकाही होता है। 'निष्कलो निष्क्रियः ' इत्यादि श्रुतियोंके व्याकोप-भयसे अखण्ड-चितिशक्तिरूप गायत्रीके चार पाद

अपने आत्मरूपसे–चतुष्पाद–विनिर्मुक्त–अपदरूपा है, वस्तुतः तुझ–अखण्ड–पूर्ण–चिति–शक्ति स्वरूप का कोई पाद नहीं है, चतुष्पाद केवल काल्पनिक हैं, ' नेति–नेति ' इत्यादि से बोधित अशेष–विशेष प्रतिषेधरूप निर्विशेष अवाङ्मनसगोचर ही गायत्रीका पारमार्थिक स्वरूप है। इस लिए वह किसीभी प्रमाणके द्वारा नहीं जाना जाता है। शास्त्रीय–व्यवहार का विषय तुरीय–परोरजा–दर्शत पद रूप गायत्री को नमस्कार है। सूर्य–मण्डल मध्यवर्ती–पुरुष अतीन्द्रिय होनेके कारण प्रत्यक्षतः देखनेमें नहीं आता हैं, इस लिए वह दर्शत पद कहा जाता है।यहां रजः का काम या लोक अर्थ है, उस समग्र रजः के ऊपरमें यह सवितादेव–प्रकाश करता हुआ रहता है, इस लिए वह रजः से परे–(परोरजा) कहा जाता है। अब इस स्तुति का प्रयोजन बतलाते हैं–वह पापी शत्रु–जो आपकी प्राप्तिमें विघ्न–कर्ता है, उस पापरूप शत्रु का विघ्नकर्तृत्व मुझे प्राप्त न हो, इति शब्द पाप क्षयरूप–फलके उप-

---

गौके चार पैरोंके तुल्य समझना उचित नहीं है, किन्तु रुपयेके अन्तर्गत–चार–चउन्नियोंके तुल्य समझना उचित है, एक अखण्ड–रुपैयेमें चार–चउन्नियोंका समावेश है, ऐसा केवल समझा जाता है, उसका पृथक्–विभाग नहीं किया जा सकता। तद्वत् गायत्रीके चार पादके विषयमें भी ऐसा ही भाव रखना चाहिए। गायत्रीका चतुर्थ-तुरीय पाद परिशुद्ध–परमानन्दनिधि–शान्त–शिव कूटस्थ ब्रह्मका सूचक है, वह अशेष–विशेषशून्य होनेके कारण स्वानुभव–संवेद्य है, और उक्त तीनों पादोंके द्वारा वह जाना जाता है।

स्थान—मन्त्रकी परिसमाप्तिके लिए है। *

**एकैव गायत्री देवी कालभेदेन त्रिधा व्यवह्रियते। तद्यथा—'गायत्री नाम पूर्वाह्णे, सावित्री मध्यमे दिने। सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिषु स्मृता॥' इति व्यासः। क्रिया-भेदेनापि 'तत्प्रयोक्तृप्राणत्राणात् गायत्रीति, सवितृद्योतनात् जगतः प्रसवितृत्वाच्च सैव सावित्रीति, वाक्स्वरूपत्वाच्च सरस्वतीति कथ्यते।**

एक ही भगवती—गायत्री देवी प्रातः-आदिकालोंके भेदसे तीन प्रकार (तीन नाम एवं तीन आकार) की कही जाती है—प्रातःकालमें गायत्री नामसे, मध्याह्न—कालमें सावित्री नामसे तथा सायंकालमें सरस्वती नाम से कही जाती है। (ये तीनों नाम एक ही वस्तुके काल—भेदसे हो गये हैं, जैसे एक ही मनुष्यके काल भेदसे बालक, युवा एवं वृद्ध ये तीन नाम हो जाते हैं) यह व्यासदेवका वचन है। एवं विभिन्न—क्रियाओंके भेदसे भी वह तीन नामसे कही जाती है—गायत्री—मन्त्रके

---

*प्रकृत-विषय अतिगम्भीर होने पर भी संस्कृत—व्याख्यान प्राञ्जल एवं प्रसन्न है, एक ही सिद्धान्तकी दृढ पुष्टि करनेके लिए, एवं साधकों की रुचि—एवं उत्साह दृढ पुष्ट करनेके लिए, अनेक श्रुति स्मृति आदि शास्त्रोंके वचन प्रमाणरूपसे देने पड़ते हैं, इस लिए इसमें पिष्ट—प्रेषणसी—पुनरुक्ति नहीं मानी जाती है, संस्कृत—के प्रेमियोंको मूल—संस्कृत—अध्यात्म—ज्योत्स्ना व्याख्यासे अधिक लाभ उठाना चाहिए, हिन्दी—व्याख्या केवल पथ प्रदर्शन मात्र है, प्रौढ संस्कृत-ज्ञोंके लिए यह हिन्दी अनुवाद सूर्यको प्रदीप दिखानेके सदृश है, केवल—हिन्दी जाननेवालोंके लिए ही यह अनुवादरूप प्रयास किया गया है।

अनुवादक—स्वामी वासुदेवानन्द.

जप-ध्यान परायण-भक्तोंके प्राणोंका परित्राण करनेसे उसका गायत्री नाम कहा गया है, सवितृ-मण्डलके द्योतन करनेसे एवं जगत्का प्रसवन (उत्पादन) करनेसे वही सावित्री नामसे कही जाती है, वेदादि-वाणी स्वरूप होनेसे उसका सरस्वती नाम पड़ा है।

**अत एव साधकाः तत्साकारस्वरूपस्य प्रातर्ध्यानं-'ॐ प्रातर्गायत्री रविमण्डलमध्यस्था, रक्तवर्णा, द्विभुजा, अक्षसूत्रकमण्डलुधरा, हंसासनसमारूढा, ब्रह्माणी ब्रह्मदैवत्या कुमारी ऋग्वेदोदाहृता ध्येया।' इति। मध्याह्नध्यानं-'ॐ मध्याह्ने सावित्री रविमण्डलमध्यस्था, कृष्णवर्णा, चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा, शङ्खचक्रगदापद्महस्ता, युवती, गरुडारूढा, वैष्णवी विष्णुदैवत्या यजुर्वेदोदाहृता ध्येया।' इति। सायाह्निध्यानं-'ॐ सायाह्ने सरस्वती रविमण्डलमध्यस्था, शुक्लवर्णा, चतुर्भुजा, त्रिशूलडमरुपाशपात्रकरा, वृषभासनसमारूढा, वृद्धा रुद्राणी रुद्रदैवत्या सामवेदोदाहृता ध्येया।' इति।**

इस लिए साधकभक्त प्रातःकालमें गायत्रीके साकार स्वरूपका ध्यान इस प्रकार करते हैं-'प्रातःकालमें गायत्री-ब्रह्माणी है, सूर्य-मण्डलके मध्यमें अवस्थित है, रक्त-वर्णा एवं द्विभुजा है, करद्वयमें अक्ष-सूत्र एवं कमण्डलु धारण किया है। हंसासनमें समारूढा (बैठी हुई) है ब्रह्मदैवत्या है, अर्थात् ब्रह्म-देवतारूपा है, कुमारी है, ऋग्वेदकी अधिष्ठात्रीरूपसे कही जाती है, ऐसा उसका ध्यान प्रातःसमय में करना चाहिए।' मध्याह्न समय (दोपहर) का ध्यान इस प्रकार है-'मध्याह्नमें सूर्य-मण्डल-मध्यवर्ती-कृष्णवर्णवाली, चार-भुजाओं

और तीन नेत्रोंवाली, शंख, चक्र, गदा एवं पद्मको धारण करनेवाली गरुड–पर बैठी हुई–युवती–वैष्णवी विष्णु–देवतारूपा यजुर्वेदकी अधिष्ठात्रीरूपसे एवं सावित्री नामसे वह कही जाती है, ऐसी मध्याह्न समयमें ध्येय है। सायं समयका ध्यान इस प्रकार है–सायंकालमें आदित्य–मण्डलके मध्यमें अवस्थित, शुक्लवर्ण एवं चतुर्भुजवाली, त्रिशूल डमरु–पाश और पात्रको चारों हाथोंमें धारण करनेवाली, वृषभके आसनपर आरूढा, वृद्धा रुद्राणी. रुद्र–देवतारूपा सामवेदकी अधिष्ठात्री रूपसे एवं सरस्वती नामसे कही जाती है, ऐसी सायं–समयमें ध्येय है।

**गायत्र्या आवाहनमन्त्रमाह–आयातु वरदा देवी, अक्षरं ब्रह्म संमितम् । गायत्री छन्दसां माता इदं ब्रह्म जुषस्व मे। ओजोऽसि, सहोऽसि, बलमसि, भ्राजोऽसि, देवानां धामनामाऽसि , विश्वमसि, विश्वायुः, सर्वमसि, सर्वायुरभिभूः, ॐ गायत्रीमावाहयामि, ॐ सावित्रीमावाहयामि, ॐ सरस्वतीमावाहयामि, छन्दर्षीनावाहयामि, श्रियमावाहयामि ।**

गायत्रीका आवाहन–मन्त्र इस प्रकार है–' वरप्रदान करनेवाली देवी आप आओ, तुम अक्षर–ब्रह्म स्वरूपिणी हो, श्रुतियोंकी माता हो, इस मेरे स्तुति–मन्त्रका तुम सेवन करो । ' हे माता तू ओजस्विनी है, सहनशीला–क्षमानिधाना है, बलवती है, तेजस्विनी है, तू देवोंकी ज्योतिरूप नामवाली है, समस्त विश्वरूप तू ही है, विश्वके जीवनरूप है, समस्त–पाप–संताप के तिरस्कारके कारणरूप है । ' ॐ ' पदप्रतिपाद्य परमात्म स्वरूप है, ऐसी गायत्रीका मैं आवाहन करता हूँ, ॐ सावित्रीका मैं आवाहन करता हूँ. ॐ मैं सरस्वतीका आवाहन

करता हूँ. छन्द-स्थित-ऋषियों का मैं आवाहन करता हूँ. सौन्दर्य निधि श्रीदेवीका मैं आवाहन करता हूँ।

ॐ गायत्रिया गायत्रीछन्दो, विश्वामित्र ऋषिः, सविता देवताऽग्निर्मुखं, ब्रह्मा शिरो, विष्णुर्हृदयं, रुद्रः शिखा, पृथिवी योनिः, प्राणापानव्यानोदानसमाना सप्राणा श्वेतवर्णा, सांख्यायनसगोत्रा गायत्री, चतुर्विंशत्यक्षरा, त्रिपदा षट्कुक्षिः पञ्चशीर्षा, उपनयने विनियोग इति।' (तै. आ. १०। ३५) इति।

गायत्री-मन्त्रका गायत्री छन्द है, विश्वामित्र-ऋषि है, सविता देवता है, अग्नि मुख है, ब्रह्मा शिर है, विष्णु हृदय है, रुद्र शिखा है, पृथिवी योनि है, प्राणादि पञ्चवायु प्राण है, श्वेत वर्ग है, सांख्यायन गोत्र है, चौवीस अक्षर हैं, तीन पादवाली है, छैः कुक्षिआं हैं, पांच शिर हैं, और इस गायत्रीका उपनयन संस्कारमें विनियोग है।

अस्यायमर्थः—वरदा=स्वोपासकानां श्रद्धालूनां भक्तानामभीष्टवरप्रदा, देवी=गायत्रीछन्दोऽभिमानिनी देवता, अक्षरं =विनाशरहितं, सम्मितं=सम्यग्वेदान्तप्रमाणेन निश्चितं, ब्रह्म= जगत्कारणं परं तत्त्वमुद्दिश्य, आयातु=आगच्छतु-अस्माकं ब्रह्मतत्त्वं बोधयितुमागच्छत्वित्यर्थः। अयमेवार्थ उत्तरार्धेन स्पष्टीक्रियते। छन्दसां=गायत्रीत्रिष्टुबादीनां वेदानां वा माता =जननी देवता, गायत्री=गायत्रीशब्दाभिधेया, मे=मम, इदं= ब्रह्म वेदान्तप्रतिपाद्यं तत्त्वं जुषस्व=जोषयतु-उपदिशत्वित्यर्थः हे गायत्रि! त्वमोजोऽसि=बलहेतुभूताष्टमधातुरूपाऽसि। सहोऽसि=शत्रूनभिभवितुं शक्तिरसि। बलमसि=शरीरगतव्यव-

हारसामर्थ्यरूपाऽसि। भ्राजोऽसि=दीप्तिरूपाऽसि। देवानामग्नी-न्द्रादीनां धाम=तेजो यदस्ति,तन्नामाऽसि,तदेव त्वन्नामेत्यर्थः। विश्वं=सर्वजगद्रूपं त्वमेवासि। विश्वायुः=सम्पूर्णायुःस्वरूपा-ऽसि॥ उक्तस्यैव व्याख्यानं सर्वमसि सर्वायुरिति। अभिभूः =सर्वस्य पापस्य संतापस्य च तिरस्कारहेतुः। ॐ-प्रणवप्रति-पाद्यपरमात्माऽसि। तादृशीं गायत्रीं मदीये मनस्येवाऽऽ-वाहयामि। सावित्रीं=सवितुः परमात्मन इमामावाहयामि। सरस्वतीं=ब्रह्मजलधारणप्रश्चोतनाभ्यां वेदाः=सरांसि तन्मय-त्वात्तद्वतीं चतुर्विंशत्यक्षरमन्त्ररूपामावाहयामि। तदङ्गानि छन्दर्षीन्, गायत्र्याः सर्वमन्त्रमयत्वेन सर्वाणि छन्दांसि सर्वांश्च-र्षीन् देवताश्च सर्वा आवाहयामि। श्रियं=गायत्रीं सर्ववेदमयी तस्मात्सर्ववेदानां श्रीरूपां तामावाहयामि। इत्येकगायत्र्या-वाहनेनाऽऽत्मनि सर्वमावाहयामीति संकल्पं कृत्वा तामावाह्य तच्छन्दादि स्मृत्वा ध्यानमाचरेत्। तत्र मन्त्रः-गायत्रिया इति। ऋषिः=मन्त्रद्रष्टा। सविता=सर्वविश्वं प्रसुवानः परमात्मा देवता तन्मन्त्रत्वात्। इति छन्दर्षिदेवतास्मरणम्। ध्यानम् -अग्निः=प्रसिद्धो मुखं=मुखस्थानीयो गायत्र्या इति संबध्यते। ब्रह्मा=चतुर्मुखः शिरः=शिरस्स्थानीयः प्रथमजत्वात्। विष्णु-र्हृदयं सर्वत्र सूक्ष्मत्वेन स्वास्थितेः कर्ता। रुद्रः शिखा-यथा शिखा सर्वावयवातीता तथा रुद्रः प्रलयकरणादतः शिखा-स्थानीयः। पृथिवी योनिः=योनिस्थानीया सर्वप्रसवहेतुत्वात् सप्राणा=सह प्राणैरिन्द्रियैः वागादिभिः। श्वेतवर्णा=प्रथम-शुद्धसत्त्वगुणप्रधानत्वात्।

इस मन्त्रका यह अर्थ है, गायत्री–छन्दकी अभिमानिनी देवता अभीष्ट वरप्रदा है, वह विनाशरहित–अक्षर ब्रह्मका जो सम्यक् वेदान्त प्रमाणके द्वारा निश्चित है, जगत्कारण–अक्षर परब्रह्मतत्त्व है–हम लोगों को बोधन करनेके लिए आवे। यही अर्थ उत्तरार्धके द्वारा स्पष्ट किया जाता है। गायत्री–त्रिष्टुप्–आदि छन्दों को जननी गायत्री–माता है। वह वेदान्त–प्रतिपाद्य–ब्रह्मतत्त्वका मुझे उपदेश करे। हे गायत्री तू बलोंका कारण अष्टम–धातु–ओजरूप है, शत्रुओंका अभिभव करनेवाली शक्तिरूप है, शरीर–स्थित–व्यवहारका सामर्थ्यरूप है, दीप्तिरूप है। विश्वमसि विश्वायुका ही सर्वमसि सर्वायुः यह व्याख्यान है। दोनोंका एकही अर्थ है। इस प्रकारकी देवी गायत्रीका मैं मेरे मनमें आवाहन करता हूँ। सविता–परमात्माकी शक्तिको सावित्री कहते हैं। ब्रह्म–जल के धारणसे एवं प्रक्षरणसे–प्राचुर्यगमनसे वेदोंका नाम सर है, तन्मय होनेसे सरःवाली को सरस्वती कहते हैं, यह चौवीस अक्षररूप मन्त्रामयी है। गायत्री सर्वमन्त्र–मय है, इस लिए गायत्रीके ही सर्व–छन्द, सर्व ऋषि, एवं समस्त–देवता अंग है, उन सबका भी मैं आवाहन करता हूँ। गायत्री सर्व वेदमयी है, इसलिए सर्व वेदोंकी वह श्रीरूपा है। इस प्रकार एक–माता–गायत्री–भगवतीके आवाहनद्वारा मैं अपने में सर्वका आवाहन करता हूं। ऐसा संकल्प (भावना) करके गायत्रीका आवाहन करके गायत्रीके छन्दः आदिका स्मरण करके ध्यान एकाग्र–मनसे करना चाहिए। छन्द आदिके स्मरणका यह मन्त्र हैं। गायत्रीका मन्त्रद्रष्टा ऋषि विश्वामित्र हैं। सर्व जगत्का प्रसवकर्ता परमात्मा देवता हैं, क्योंकि–यह गायत्री–मन्त्र परमात्माका प्रतिपादक है। इस प्रकार

छन्द-ऋषि एवं देवता का स्मरण करना चाहिए। ध्यान इस प्रकार है-गायत्रीके मुखस्थानापन्न यह प्रसिद्ध-अग्नि है, चतुर्मुख ब्रह्मा प्रथमजन्मा होनेके कारण शिरः स्थानापन्न है। सर्वत्र-सूक्ष्मरूपसे अपनी स्थितिका स्थापक है, इसलिए विष्णु गायत्रीका हृदय है, जैसे शिखा शरीरके समग्र अवयवोंसे अतीत है, तैसे रुद्र भी सर्व जगत्का प्रलय करनेसे सबसे अतीत है, इस लिए रुद्र गायत्रीके शिखा स्थानापन्न है। सर्व-प्रसवका कारण होनेसे यह पृथिवी गायत्रीकी योनिके स्थानापन्न है। वागादि-इन्द्रियरूप प्राणोंके साथ वर्तमान होनेके कारण गायत्री सप्राणा है। प्रथम एवं प्रधान शुद्ध-सत्वगुणरूप होनेके कारण गायत्री श्वेतवर्णवाली है।

**सांख्यायनसगोत्रा='समित्येकीभावे' इति निरुक्ते यास्कः एकीभावेन-आत्मानन्यत्वेन ख्यायते-प्रकाश्यते वस्तुस्वरूपमनयेति संख्या-स्थूलसूक्ष्मकारणप्रपञ्चस्य निर्विकल्पे प्रत्यगात्मनि प्रविलापेनोदिताऽखण्डब्रह्माकारा ब्रह्मविद्यारूपा चेतोवृत्तिः संख्या, तां ये वहन्ति=धारयन्ति ते सांख्याः=ज्ञाननिष्ठाः परमहंसाः संन्यासिनः, तैः ईयते-गम्यते प्राप्यते यः सः प्रत्यगभिन्नः परमात्मा-सांख्यायनः, तेन समानं=एकं गोत्रं कुलं-उद्भवोऽस्याः सांख्यायनसगोत्रा इति देवतारूपत्वेन ध्यानमुक्त्वा मन्त्ररूपत्वेन विवक्षुः पुनर्गायत्रीमुपादत्ते-गायत्री मन्त्ररूपा चतुर्विंशतिरक्षराण्यस्याः सा तथोक्ता। त्रयः पादा अस्याः सा त्रिपदा। षड् शिक्षादीनि वेदाङ्गानि कुक्षयोऽस्याः सा। पञ्चशीर्षा=चतुर्णां वेदानां चत्वारः उपनिषद्भागा-ज्ञान-**

प्रतिपादिनः कर्मोपासनाकाण्डयोरुपरि स्थिताश्चत्वारि शीर्षाणि =शिरांसि, तथेतिहासपुराणानि पञ्चमो वेदो ज्ञानप्रतिपादकत्वात् पञ्चमं शीर्षमस्याः सा पञ्चशीर्षा इति। इति ध्यात्वाऽनेन मन्त्रेण बटोरुपनयने=उपवीतकरणे विनियोग इत्येवं स्मृत्वा पठित्वा च गायत्रीमन्त्रं जपेदिति।

एकभाव—अनन्यभावसे जिसके द्वारा वस्तुका स्वरूप प्रकाशित होता है, वह निर्विकल्प—परमात्मामें स्थूल—सूक्ष्म एवं कारण प्रपञ्चके प्रविलापनद्वारा—उदित होनेवाली—अखण्ड—ब्रह्माकारा ब्रह्मविद्यारूप—चित्तवृत्ति है, उसको संख्या कहते हैं। उसका जो वहन—धारण करते हैं, वे ज्ञाननिष्ठ—परमहंस संन्यासी सांख्य नामसे कहे जाते हैं। उन के द्वारा जो प्राप्त होता है, वह प्रत्यगभिन्न—परमात्मा सांख्यायन है। उसके समान—एक ही गोत्र यानी कुल—( उद्भव ) गायत्रीका है, इस लिए गायत्री सांख्यायन सगोत्रा है, इस प्रकार गायत्रीका देवतारूपसे ध्यान कहके, मन्त्ररूपसे कहने की इच्छावाला ऋषि गायत्रीका पुनः निरूपणके लिए ग्रहण करता है। गायत्री मन्त्ररूपा है, चौबीस—अक्षरोंवाली है, तीन पादवाली है, शिक्षा आदि वेदोंके छैः अंग ही गायत्रीकी छैः कुक्षियाँ हैं। चारों वेदोंके—ज्ञानप्रतिपादक—चार—उपनिषत्—भाग, जो कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्डके उपरि—भागमें स्थित हैं, वे चार शिर, तथा ज्ञानका प्रतिपादक पञ्चम वेदरूप—इतिहास—पुराण यह पञ्चम शिर, गायत्रीके माने गये हैं। ऐसा ध्यान कर के इस मन्त्रके द्वारा बटु (ब्रह्मचारी) के उपनयन ( उपवीत ) संस्कार करनेमें इसका विनियोग है, ऐसा स्मरण करके पढ करके पश्चात्—गायत्री—मन्त्रका जप करना चाहिए।

शिवभक्तास्तु गायत्रीं शिवस्वरूपं मन्यन्ते-' यः शिवः सा तु गायत्री गायत्री या शिवस्तु सः। मूढा एवं न जानन्ति ह्यज्ञानतमसा वृताः ॥ सकलेनैव रूपेण गायत्री शिव उच्यते। निष्कलेनैव भावेन गायत्री कथ्यते शिवः॥' इति। अत एवोक्त-मादित्यपुराणेऽपि-'गायत्र्याः परमं तत्त्वं देवदेवो महेश्वरः। इति ध्यात्वा जपन् विद्वान् गायत्र्याः फलमश्नुते ॥' कौर्मेऽपि राजवंशानुकीर्तने वसुमनसो राज्ञो गायत्र्या सूर्यमण्डलस्थं शि-वमुपासीनस्य सूर्यमण्डलान्निर्गतेन शिवेन प्रसादः कृत इत्युप-वर्णितम्। तथाहि-' राजा वसुमनास्तत्र रविमण्डलमध्यगम्। समुपासिष्ट गायत्र्या पुरुषं रुक्मविग्रहम्। अनुग्रहार्थं तस्याथ भगवान् परमः शिवः। आविर्भूय रवेर्बिम्बादस्मै रूपमदर्शयत्। शिवशक्तिमयं दिव्यं चन्द्रार्धकृतशेखरम्। त्रिलोचनं नीलकण्ठं ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रवन्दितम्। अनुगृह्य च तं कालं देहान्तेऽदान्निजं पदम्। तुष्टश्चिरतरं तस्य गायत्र्याराधनादिभिः ॥' (भृङ्गी-शतन्त्रे ५) इति

शिवभक्त तो गायत्रीको शिवस्वरूप मानते हैं-' जो शिव है, वह गायत्री है, जो गायत्री है, वह शिव है, इस प्रकार गायत्री एवं शिवके अभेद को अज्ञानरूप तमः से आवृत्त मूढ नहीं जानते हैं। सकल (साकार-सगुण) रूपसे एवं निष्कल (निराकार-निर्गुण) रूप से भी गायत्री शिवरूप कही जाती है' अतएव आदित्य-पुराणमें भी कहा है कि-' गायत्रीका परमतत्त्व देवदेव महेश्वर है, ऐसा ध्यान कर के गायत्रीका जप करता हुआ विद्वान् सर्वोत्तम-फलको प्राप्त होता है।'

कूर्म-पुराणमें भी—जहां राज-वंशोंका अनुकीर्तन है, वहां—गायत्री मन्त्र के द्वारा सूर्य—मण्डलावस्थित—भगवान् शिवकी उपासना करनेवाले वसु-मना नामवाले राजाके ऊपर सूर्य—मण्डल से आविर्भूत—भगवान् श्री शिवने दर्शन आदि देकर बड़ी कृपा की थी, ऐसा—वर्णन किया है—राजा वसुमनाने गायत्री मन्त्र जपके द्वारा रवि मण्डलके मध्यमें अव-स्थित—सुवर्णसदृश—तेजोमय विग्रहवाले—पुरुषकी उपासना की थी, उस उपासनाके प्रभावसे राजा के ऊपर अनुग्रह करनेके लिए भगवान् परम शिवने—सूर्यके बिम्बसे आविर्भूत हो कर अपने दिव्य स्वरूपका दिखाया था। राजाके द्वारा देखा गया वह रूप इस प्रकारका था—'ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, ( वामन ) आदि—देवोंके द्वारा वन्दित—त्रिलोचन ( तीन नेंत्रवाला ) नीलकण्ठ ( नीलवर्णकी ग्रीवावाला ) बालचन्द्रके द्वारा जिसका ललाट सुशोभित है, ऐसा दिव्य—शिवशक्तिमय स्वरूप को राजाने देखा। इस प्रकार अपना दर्शन दे करके उस समय राजाको अनुग्रहीत करके पश्चात् देहान्तके समयमें भगवान्नेअपने परम पदका प्रदान किया था। भगवान् श्री शिव, गायत्री मन्त्रके आराधना आदिसे ही राजाके ऊपर अतीव संतुष्ट हुए थे।' इस प्रकार भृङ्गीशतन्त्रमें भी वसुमना राजाका उपाख्यान वर्णित है।

**विष्णुभक्ता भागवतास्तु गायत्रीमन्त्रेण सत्यमानन्दपूर्णं सौन्दर्यसारसर्वस्वं विष्णुस्वरूपमेव चिन्तयन्ति। अत एव वैष्णव-पुराणे श्रीमद्भागवते-आदिमंगलश्लोके—'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।' तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये' इत्यारभ्य 'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं**

परं धीमहि।' इत्यन्तेन संदर्भेण जगज्जन्मादिकारणत्वेन बुद्धि-वृत्तिप्रवर्तकत्वेन परसत्यज्योतिर्ध्यानोपदेशेन च गायत्र्यर्थ एवाभिवर्ण्यते। तथा चोक्तं-'यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः। गायत्र्या च समारम्भः तद्वै भागवतं विदुः॥" इति। एवमेव श्रीधरस्वामिभिरपि-'अनेन गायत्र्यर्थो दर्शितः' इति व्याख्यातम्।

विष्णुभक्त-भागवत गायत्रीमन्त्रके द्वारा सत्य-आनन्दपूर्ण-सौन्दर्यसारसर्वस्व-विष्णु-स्वरूपका ही चिन्तन करते हैं। इसलिए वैष्णव-पुराण श्रीमद्भागवतके आदिके मंगल श्लोकमें-'जिससे इस जगत्की उत्पत्ति आदि होती है, जिसका अन्वय सर्वत्र है, जिसके बिना सबका व्यतिरेक ( प्रतिषेध ) हो जाता है, जो समस्त-कार्य वर्गका अभिज्ञ एवं स्वराट् है। उसीने ही आदिकवि-ब्रह्मा के हृदयमें वेदों के विज्ञानका विस्तार किया था।' यहांसे आरंभ करके-'अपने स्वयं प्रकाश विज्ञान-ज्योतिसे माया कापटचका जिसमें निरास हो गया है, वह सत्य-पर-ज्योतिका हम ध्यान करते हैं।' इस अन्तिम-संदर्भ के द्वारा जगत्के जन्मादिके कारणत्वसे, बुद्धि-वृत्तियोंके प्रवर्तकत्वसे एवं पर-सत्य-ज्योतिके ध्यान-उपदेशसे गायत्रीके अर्थका ही वर्णन किया गया है-ऐसा ही अन्यत्र कहा गया है 'जहां गायत्री मन्त्रका आश्रय लेकर विविध धर्म विस्तारका वर्णन किया गया है, गायत्री मन्त्रसे जिसका समारंभ किया है, वही श्रीमद्भागवत है, ऐसा विद्वान्-गण कहते हैं।' इस प्रकार भागवत व्याख्याता-श्रीधर स्वामीने भी-'इस आदिम मंगल-श्लोकसे गायत्री का अर्थ ही दिखाया है।'

ऐसा व्याख्यान किया है।

इत्येवं गायत्र्याः परममहत्त्वादिकं तदनुष्ठानादौ मनुजानां दृढां रुचिं प्रसोतुं यत्किञ्चिद्वर्ण्यमानमपि विदुषां तदनन्तमेव प्रतिभाति। तथा चान्ते-'गायत्री चैव जननी गायत्री पापनाशिनी। गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम्॥' ( शङ्खसंहिता. ११। १२) इत्यभिधाय विस्तृतलेखनाद्विरराम इति।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-स्वामि-महेश्वरानन्दगिरि-मण्डलेश्वरप्रणीता-गायत्रीमीमांसा समाप्ता॥

शिवोऽहं, शिवःसर्वम्।

इस प्रकार गायत्रीके अनुष्ठान आदिमें मनुष्योंकी दृढ-रुचि उत्पन्न करनेके लिए गायत्रीके परम महत्त्व आदिका यत्किञ्चित् वर्णन करने पर भी विद्वानोंको वह महत्त्व आदि-अनन्त ही प्रतीत होता है तथा च अन्तमें—'गायत्री ही सच्ची माता है, गायत्री ही समस्त-पापों का नाश करती है, गायत्रीसे बढकर इस लोकमें या परलोकमें अन्य पावन-मन्त्र कोई नहीं है।' इतना कह करके आनन्दकन्द परमेश्वरको कोटिशः धन्यवाद देते हुए विस्तृत शुक्लयजुर्वेद-संहितोपनिषच्छतकान्तर्गत गायत्रीमन्त्रकी व्याख्या-अध्यात्मज्योत्स्नाविवृतिका अविकल अनुवाद-विज्ञ-श्रद्धालुपाठकोंके प्रमोदार्थ संक्षेपसे पूर्ण करते हुए विश्रान्ति लेते हैं, इतिशम्।

-व्याकरण-साहित्य-न्यायतीर्थ-स्वामी-वासुदेवानन्द-शास्त्री प्रणीत-गायत्री-मीमांसा का हिन्दी-अनुवाद समाप्त।
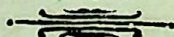
हरिः ॐ तत्सत्

# सन्ध्योपासनम्

## भस्म–त्रिपुण्ड्र–विधि

शौच, एवं शुद्ध जल स्नान करनेके अनन्तर, संध्या, मन्त्र–जप, स्वाध्याय–देवपूजन आदि शुभ कर्मके आरंभमें अवश्य ही भस्मका त्रिपुण्ड्र करना चाहिए। वाम हाथमें भस्म लेकर, और उसके ऊपर दूसरे हाथकी हथेली ढककर अर्थात् भस्मको संपुट करके पश्चात् '**ॐ अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वं ह वा इदं भस्म, मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि।**' इस मन्त्रके द्वारा भस्मको अभिमन्त्रित करना चाहिए। पश्चात् उस भस्ममें '**ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।**' इस मन्त्रको बोलकर जलका मिश्रण करना चाहिए। पश्चात् दोनों हस्तोंके मध्यकी तीन–अंगुलियोंके द्वारा–'**ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।**' इस मन्त्रको बोल कर भस्मका मर्दन करना चाहिए। पश्चात '**ॐ नमः शिवायः**' इस मन्त्रको बोलते हुए ललाट, कण्ठ, हृदय, बाहुओं की संधि, हाथ, शिर, स्कंध, आदि स्थानोंमें भस्मके त्रिपुण्ड्र करने चाहिए। अग्निहोत्र, यज्ञ, विरजाहोम तथा गायका गोबर, बिल्वपत्र आदिकी बनी हुई भस्म ग्राह्य मानी गई है। भस्म धारणकी महिमा शास्त्रोंमें कही है—

'एतानि तानि शिवमन्त्रपवित्रितानि,
भस्मानि भूतदुरितक्षपणक्षमाणि ।
भाले स्थितानि हृदयस्थतमोपहानि,
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥

शिवमन्त्रसे पवित्र की हुई वह भस्म पांच भूतके बने हुए शरीरों के समस्त पापोंके निवारणके लिए समर्थ है, ललाट में धारण की हुई वह भस्म, हृदयके अज्ञानान्धकार एवं तामसिक भावोंको विनाश कर देती है, और दैव ( प्रारब्ध ) के लिखे हुए ललाटके खोटे अक्षरोंको मिटा देती है ।

## संध्या आदिके अधिकारका निर्णय।

समस्त द्विजवर्गका संध्या आदि वैदिककर्म करनेका एवं गायत्री मन्त्र जप एवं यज्ञोपवीत धारण करनेका अधिकार है । द्विज किसे कहते हैं ? इस विषयमें मनु आदि महर्षियोंने कहा है—

'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।'
( मनुस्मृतिः १० । ४ )

ब्राह्मण ( शिक्षक–शर्मा ) क्षत्रिय ( रक्षक–वर्मा ) वैश्य (पोषक-गुप्त ) ये तीन वर्ण द्विजाति अर्थात् द्विज कहे जाते हैं ।

'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति वर्णाश्चत्वारः ।
तेषामाद्या द्विजातयस्त्रयः । ' 'विष्णुस्मृतिः' । २ । २ ।

'मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ॥
( याज्ञवल्क्यस्मृ० १ । ३९ )

जिसके दो जन्म होते हैं, उसे द्विज कहते हैं, प्रथमका जन्म माता–पिता से होता है, और द्वितीयजन्म मौञ्जिबन्धन अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने से होता है। इस द्वितीय जन्मकी माता गायत्री है, और पिता आचार्य्य गुरु है।

## नूतन–यज्ञोपवीत धारण विधि ।

अशौच ( सूतक–आदि ) होने पर, ग्रहणकी समाप्ति होने पर अकस्मात्–टूट जाने पर, मूत्र–पुरीषोत्सर्ग करते समय दाहिने–कानके ऊपर यज्ञोपवीत रखनेमें भूल होने पर, या उसके गिर जाने पर, नूतन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। उसके धारण की संक्षिप्त–विधि यह है–स्नानके अनन्तर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख आसन पर बैठ कर आचमन करे, एवं एक प्राणायाम करे, फिर नवीन यज्ञोपवीतको ले कर 'आपो हि ष्ठा' इस समग्र मन्त्रके द्वारा जलसे उसका अभिषेक करे। तत्पश्चात् उसके नव तन्तुओंमें ॐकार आदि सशक्तिक नव देवताओंके न्यासकी भावना इस प्रकार बोल करके –'**ॐकारं प्रथमतन्तौ न्यसामि, ॐ अग्निं द्वितीयतन्तौ न्यसामि, ॐ नागान् तृतीयतन्तौ न्यसामि, ॐ सोमं चतुर्थतन्तौ न्यसामि, ॐ पितॄन् पञ्चमतन्तौ न्यसामि, ॐ प्रजापतिं षष्ठतन्तौ न्यसामि, ॐ वायुं सप्तमतन्तौ न्यसामि, ॐ सूर्यं अष्टमतन्तौ न्यसामि, ॐ विश्वान् देवान् नवमतन्तौ न्यसामि,** करनी चाहिए। पश्चात् '**यज्ञोपवीतस्य तिसृषु ग्रन्थिषु क्रमशः ब्रह्माणं विष्णुं शंकरञ्च न्यसामि**' ऐसा बोल कर तीन–ग्रन्थियोंमें ब्रह्मा विष्णु और रुद्रके न्यास–स्थापनकी भावना करनी चाहिए। पश्चात् दोनों हाथके अंगुठा एवं

तर्जनी तथा मध्यमा एवं कनिष्ठिका ( अंगुली ) के मध्यमें जनोइ रख करके दोनों हाथ उंचा करके '**ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्** ' इत्यादि पुरा मन्त्र बोल करके यज्ञोपवीत सूर्यको दिखाना चाहिए। पश्चात्—

'**यज्ञोपवीतमिति परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः लिङ्गोक्ता देवता श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानाधिकारसिद्धये यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः ।**'

यह विनियोग पढे, और—

'**ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।**'

इस मन्त्रको पढ कर एक जोडा यज्ञोपवीत पहिने । फिर कमसे कम बीस वार गायत्री मन्त्रका जप करे । इसके बाद प्राचीन यज्ञोपवीतकों गलेसे बाहर निकाल कर '**समुद्रं गच्छ स्वाहा**' इस मन्त्रको पढ कर या '**एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया । जीर्णत्वात्त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्रं यथासुखम् ॥**' इस मन्त्रको पढ कर जलाशयमें फेंक देना चाहिए । इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करने के बाद ही संध्या आदि कर्म करनेका अधिकार होता है ।

श्रावणी–पुर्णिमाके पवित्र दिनमें जलाशयके समीप जाकर प्रत्येक द्विजको शास्त्र–विहित कर्म करके नवीन–यज्ञोपवीत धारण करनी चाहिए ।

## संध्या–शब्दका अर्थ तथा उत्तमादि काल ।

'**सम्यक् ध्यायन्ति श्रद्धालवः परं ब्रह्म यस्यां सा संध्या**'

अर्थात् संध्या उसको कहते हैं—कि जिसमें भलीभांति श्रद्धालु-जन परब्रह्मका ध्यान करते हैं। सन्ध्या शब्दका दूसरा अर्थ है—सन्धिकालमें की जानेवाली भगवदुपासना । जैसा मुनियोंने कहा है—

**'अहोरात्रस्य या सन्धिः सूर्यनक्षत्रवर्जिता ।**
**सा तु सन्ध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥**

तत्त्वदर्शी मुनि, सूर्य तथा नक्षत्रों से वर्जित दिन एवं रात्रिके संयोग ( सन्धि ) को संध्या कहते हैं। लक्षणासे उस सन्धिमें की जानी वाली उपासना संध्या कही जाती है । ऋषियोंने समयानुसार संध्याके तीन भेद किये हैं, प्रातः सन्ध्याके विषयमें इस प्रकार कहा है—

**उत्तमा तारकोपेता, मध्यमा लुप्ततारका ।**
**अधमा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा स्मृता ॥**

सूर्य उगनेके पहिले—जब आकाशमें तारोंका दर्शन होता हो, उस समयकी सन्ध्या उत्तम है, जब तारे लुप्त हो गये हों परन्तु सूर्यका उदय न हुआ हो, उस समयकी सन्ध्या मध्यम है, अधमा प्रातः सन्ध्या वह है जो सूर्य—उदय हो जाने पर की जावे ।

ऐसे ही सायं सन्ध्याके तीन भेद है—

**उत्तमा सूर्यसंयुक्ता मध्यमा लुप्तभास्करा ।**
**अधमा तारकोपेता सायं सन्ध्या त्रिधास्मृता ॥**

जब सूर्य अस्त न हुआ हो—वह सायं सन्ध्योपासनका उत्तम काल है। जब सूर्य अस्त हो गया हो, तब की सन्ध्या मध्यम है। तथा जो सूर्यास्तके बाद आकाशमें तारोंके उग जाने पर की जावे, वह अधम संध्या है ।

## अथ संध्याप्रयोग

प्रातःकाल और मध्याह्न-सन्ध्याके समय पूर्वकी तरफ तथा सायंकालकी संध्याके समय पश्चिमकी ओर मुख करके—दर्भ या मृगचर्म या ऊनके शुद्ध आसन पर बैठ भस्म तिलक करे। पश्चात् गायत्री-मन्त्र बोल कर शिखा बांधे, शिखाबंधी हो तों उसका मात्र स्पर्श करे। पश्चात् हाथ धो कर '**ॐ भूः पुनातु**' '**ॐ भुवः पुनातु**' '**ॐ स्वः पुनातु**' ये तीन मन्त्र बोल करके क्रमशः तीन आचमन करे। पश्चात्—'**ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥**' यह मन्त्र पढकर शरीर पर दर्भादिके द्वारा कुछ जल छिडके।

पश्चात् दहिने हाथमें जल लेकर यह संकल्प पढे, संवत्सर, मास, तिथि, वार, गोत्र, तथा अपना नाम उच्चारण करे। ब्राह्मण हो तो 'शर्मा' क्षत्रिय 'वर्मा' और वैश्य हो तो नाम के आगे 'गुप्त' शब्द जोड़ कर बोले—'**ॐ तत्सदद्यैतस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्मा-वर्मा-गुप्तोऽहं ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकभगवत्प्रीत्यर्थं प्रातः सन्ध्योपासनं कर्म करिष्ये।**

## आसन-शुद्धि एवं आचमन

अब दाहिने हाथमें जल लेकर निचे लिखा विनियोग पढ कर वह जल पृथ्वीपर छोडे। '**ॐ पृथिवीत्यस्य मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः**

सुतलं छन्दः, कूर्मो देवता आसने विनियोगः । पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रको पढ कर आसन पर जलके छींटे दे ।

ॐ पृथिवि त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम् ॥

( हे पृथ्वी विष्णुने तुमको धारण किया, तुमने लोकोंको धारण किया है, अब तुम मुझको धारण करो, और मेरे आसनको पवित्र करो)

अब नीचे लिखा मन्त्र पढ कर पुनः तीन वार आचमन करे—

ॐ 'ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत, ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः, समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी । सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥' ( ऋ. १० । १९० । १–२–३ ).

( महाप्रलयके शून्य—अन्धकारमें एकमात्र सत्य परब्रह्म था, सृष्टिके आदिमें जलमय समुद्र हुआ, पश्चात् विधाता—ब्रह्मा हुए उन्होंने दिन और रात्रि करनेवाले सूर्य चन्द्रमाको पूर्वकल्पके अनुसार रचा, पश्चात् रात्रि—दिन और संवत्सर हुए, फिर स्वर्गलोकादिकी रचना हुई )

तदनन्तर ॐ के साथ गायत्रीमन्त्र पढ कर रक्षाके लिए अपने चारों ओर जल छिडके, पश्चात् नीचे लिखे एक—एक विनियोगको पढ कर पृथ्वी पर जल छोडता जाय, अर्थात् चारों विनियोगोंके लिए चार वार आचमनीसे जल छोडे ।

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णः सर्वकर्मारंभे विनियोगः । ॐ सप्तव्याहृतीनां विश्वामित्रजम-

दग्निभरद्वाजगोतमात्रिवसिष्ठकश्यपाऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दाँसि, अग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः अनादिष्टप्रायश्चित्ते प्राणायामे विनियोगः । ॐ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवताऽग्निर्मुखमुपनयने प्राणायामे विनियोगः । ॐ शिरसः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपदा गायत्री छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवता यजुःप्राणायामे विनियोगः ।'

## प्राणायामविधि

आंखे बंद करके नीचे लिखे मन्त्रसे तीन वार प्राणायाम करे । प्रथम अंगूठे से नासिका के दहिने छिद्रको बंद कर बायें छिद्रसे वायु को अन्दर खैंचे, और ऐसा करता हुआ नाभिदेशमें नीलकमल दलके समान नीलवर्ण—चतुर्भुज भगवान् श्री विष्णुका ध्यान करे, यह पूरक प्राणायाम है । इसके बाद अंगूठे और अनामिकासे नासिकाके दोनों छिद्रोंको बंद करके वायुको अन्दर रोक ले, यों करता हुआ हृदयमें कमलके आसन पर विराजमान, रक्तवर्ण चतुर्मुख भगवान् श्रीब्रह्माका ध्यान करे, यह कुम्भक प्राणायाम है । अनन्तर अंगूठा हटा कर दहिने छिद्रसे वायुको धीरे धीरे बाहर निकाल दे । इस समय त्रिनेत्रधारी शुद्ध श्वेत वर्ण भगवान् श्रीशङ्करका ललाटमें ध्यान करे, यह रेचक प्राणायाम है ।

नीचे लिखे मन्त्रका तीनों ही प्राणायामके समय तीन—तीन वार या एक एक वार जप करनेका अभ्यास करना चाहिये ।

## प्राणायाम-मन्त्र

'ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ।' ( तै, आ. १० । २७ । १ )

## प्रातःकालका विनियोग और मन्त्र

नीचे लिखा विनियोग पढकर आचमनी से पृथ्वीपर जल छोड दे ।

**सूर्यश्चमेति ब्रह्मा ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्योदेवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।**

अब नीचे लिखे मन्त्रको पढ कर आचमनं करे ।

**ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां, यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु, यत्किञ्च दुरितं मयि, इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।'तै.आ.१०।२५।१'**

( सूर्यनारायण, क्रोधाभिमानी देवता तथा क्रोधदेवता के अधिष्ठाता–शिव विष्णु आदि महादेवताओं से मेरी प्रार्थना है कि—वे काम क्रोधादि दोष–द्वारा किये हुए पापों से मेरी रक्षा करें । जो पाप मनसे, वाणीसे, हाथों से, पैरोंसे एवं लिङ्गसे किये हैं, उन सब पापों को रात्रिकी अधिष्ठातृ–देवता नष्ट करे । जो कुछ पापबुद्धि मेरे में विद्यमान है, इसको मैं अमृतयोनि–ज्योतिःस्वरूप सूर्य भगवान्में होम करता हूँ । वह उसमें अच्छी तरहसे भस्मीभूत हो जाय, अर्थात् मेरी निष्पाप पवित्र बुद्धि हो जाय )

## मध्याह्नका विनियोग और मन्त्र

नीचे लिखा विनियोग पढ कर पृथ्वी पर जल छोड दे ।

**'आपः पुनन्त्विति विष्णुर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपोदेवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।'**

नीचे लिखे मन्त्र को पढकर आचमन करे ।

**ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं, पृथिवीं पूता पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् । यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहँ स्वाहा ॥ ( तै. आ. १०।२३।१–२ )**

( जल पृथ्वी को या पार्थिव—स्थूल शरीरको पवित्र करे, पवित्र हुई पृथ्वी मुझको पवित्र करे। यह जल, वेद—ज्ञानके पति—अन्तरात्मा को पवित्र करे, सबसे पवित्र ब्रह्म, मुझको पवित्र करे। मैंने जो उच्छिष्ट ( जूठा ) और अभोज्य 'निन्दित' भोजन किया हो, अथवा जो दुश्चरित्र 'पापकर्म' किये हों, या असत् यानी अन्यायोपार्जित—द्रव्यों का स्वीकार किया हो, इन सब पाप—अपराधों से जल—देवता मुझे पवित्र करे, आचमनके द्वारा वे सब पापकर्म भस्मीभूत हो जावें )

## सायंकालका विनियोग और मन्त्र

नीचे लिखा विनियोग पढ कर पृथ्वी पर जल छोड दे ।

**अग्निश्चमेति रुद्र ऋषिः प्रकृतिश्छन्दोऽग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।**

नीचे लिखे मन्त्रको पढकर आचमन करे ।

**ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो**

**रक्षन्तां, यदह्ना पापमकार्षं, मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु, यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।**

'इस मन्त्रका अर्थ पूर्वोक्तके समान है, सूर्य के स्थानमें यहां अग्निदेवता है, तथा रात्रिके स्थानमें दिन है, अहः शब्दका दिवस अर्थ है ।

## मार्जन एवं विनियोग

नीचे लिखा विनियोग पढ कर पृथ्वीपर जल छोड दे ।

**आपो हिष्ठेत्यादित्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्रीछन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः ।**

अब नीचेके नव मन्त्रोंके द्वारा तीन कुशाओंसे मार्जन करे, कुशाओंके अभावमें तीन अंगुलियोंसे मार्जन करे । सात मन्त्रोंसे सिर पर जल छिड़के, आठवेंसे भूमि पर, और नवमें मन्त्रसे फिर सिर पर मार्जन करे ।

**' ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः, ॐ ता न ऊर्जे दधातन ॐ महे रणाय चक्षसे, ॐ यो वः शिवतमो रसः, ॐ तस्य भाजयतेह नः, ॐ उशतीरिव मातरः, ॐ तस्मा अरं गमाम वः, ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ, ॐ आपो जनयथा च नः।'**
**( शु. य. ११ । ५०-५१-५२ )**

(हे जलदेवता ! आप निश्चय ही हमको आनन्द देनेवाले हो, यह जल हमको बल-पुष्टि-विद्या एवं अभ्युदयके संपादन करनेके लिए समर्थ करें; एवं महारमणीय-परब्रह्म साक्षात्कार करने योग्य बनायें; हे जलदेव ! आपका अत्यन्त कल्याणकारी जो पवित्र रस है, हमको इस

लोकमें उस रसका उपभोक्ता बनायें, अपने पुत्रोंके कल्याणकी चाहना करनेवाली—माताओंके समान आप हमारे कल्याणकी कामना करें, हे देव ! तुम्हारे उस सुखद—दिव्य रससे सदा हम पुष्टि एवं तृप्ति प्राप्त करें, जिस संसारके आधाररूप रससे तुम जगत्को तृप्त एवं प्रसन्न करते हो, हे जलदेवता ! उस रसके द्वारा हमें धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष रूप चतुर्विध—पुरुषार्थके सम्पादन करनेके लिये शक्तिमान् बनायें )

## अघमर्षण एवं विनियोग

नीचे लिखा विनियोग पढकर पृथ्वीपर जल छोड दे ।

**द्रुपदादिवेत्यस्याघमर्षण ( पापनाशक ) मन्त्रस्य कोकिलो राजपुत्र ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः, आपो देवता सौत्रामण्यवभृथे विनियोगः ।**

दहिने हाथमें जल ले कर उसे नासिकाके समीप करके श्वास आते या जाते समय नीचे लिखे मन्त्रको एक वार या तीनवार बोलकर उस जलको विना देखे बांयी ओर भूमि पर फेंक देवे ।

**' ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव, पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः । '**

(जिस प्रकार पादुकासे अलग की हुई धूलि फिर उससे दूर ही रहती है, उस प्रकार हे जलदेव ! मुझे पाप—कर्मोंसे सदा दूर ही रक्खें, जिस प्रकार पसीनावाला मनुष्य स्नानके द्वारा मलरहित—पवित्र हो जाता है, या जिस प्रकार घृत, पवित्र ( ऊनके कपड़े ) से छानने पर मलरहित—शुद्ध हो जाता है, तद्वत् हे जलदेवता ! मुझें पापोंसे मुक्त करके पवित्र बनायें )

## अर्घ्य-दान

नीचे लिखा विनियोग पढकर पृथ्वी पर जल छोड दे ।

अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।

इस मन्त्रको पढकर आचमन कर ले—

'ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः, त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् । '

( हे सूर्यनारायण ! तुम यावत् भूत-प्राणियोंके मध्यमें विचरते हो, पिण्ड-ब्रह्माण्डरूप गुफामें चारों ओर व्यापक हो, तुम यज्ञस्वरूप वषट्कारस्वरूप, जलरूप, ज्योतिः स्वरूप, रसरूप एवं अमृतरूप हो )

फिर सूर्य के सामने खडा हो कर एक चरणकी एडी उठाये हुए, ओंकार और व्याहृतियोंके सहित गायत्रीमन्त्रका तीन वार जप करके पुष्प मिले हुए जलसे सूर्य-नारायणको तीनवार अर्घ्याञ्जलि-प्रदान करे।

## सूर्योपस्थान

नीचे लिखे चारों विनियोगोंको एक-एक पढ कर चार वार जल पृथ्वी पर छोड दे—

' उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः । उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्री छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः । चित्रमित्यस्य कौत्स ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः। तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिरक्षरातीतपुर-उष्णिक्छन्दः सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ।'

नीचे लिखे मन्त्रोंको पढकर सूर्यका उपस्थान करे। उपस्थानके समय प्रातःकाल और सायंकाल नम्रतापूर्वक श्रद्धासे अञ्जलि बांध कर और मध्याह्नमें दोनों बांहोंको ऊपर उठा कर खडा रहे। '**ॐ असावादित्यो ब्रह्म**' ( यह आदित्य ब्रह्म है ) '**योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि**' (वही यह आदित्य-पुरुष मैं हूँ) '**स यश्चायं पुरुषे, यश्चासावादित्ये स एकः**' ( जो आत्मा इस शरीरमें है, जो इस आदित्यमण्डलमें है, वह एक है ) इन मन्त्रोंकेद्वारा आदित्य-ब्रह्म-एवं आत्माकी अभिन्नताकी भावना करता हुआ उपस्थानके ये मन्त्र बोले—

**ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरं, देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् । ( शु. य. २०।२१ ) ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ( शु. य ७।४१ ) ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवीअन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ' ( शु. य. ७।४२) ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ' ( शु. य. ३६।२४ )**

( हे सूर्यदेव ! हम अज्ञानान्धकारसे रहित हो जायँ, सर्वोत्तम-पूर्ण-विशुद्ध आनन्दका सदा हम अनुभव करें, और देवलोक-मोक्षधाममें अवस्थित हो कर आप अन्तरात्मा सूर्यदेवके उत्तम-शान्त दिव्य ज्योतिको प्राप्त करें । हे भगवन् ! सदाचारी-श्रद्धालु जनोंकी बुद्धिको पवित्र करती हुई आपकी तेजोमयी-किरणें-समस्त विश्वके दर्शनके

लिए आपका वहन करती हुई—चलती रहती हैं । हे सूर्यनारायण ! बड़े आश्चर्य के साथ—आपकी स्वयं—प्रकाश ज्योतिका अवलम्बन लेकर चक्षुरादि—इन्द्रियोंके अनुग्राहक—देवोंका समुदाय उदित हो रहा है । आप चक्षु—अनुग्राहक—मित्रदेवताके, रसना—अनुग्राहक—वरुणदेवताके एवं वाणी—अनुग्राहक—अग्निदेवताके प्रकाशक हैं, आपने स्वर्ग—पृथिवी एवं अन्तरिक्षरूपत्रिलोकीको व्याप्त किया है, अतः आप स्थावरजंगम रूप यावत् विश्वके अन्तरात्मा हैं । वह जगत्का प्रकाशक—दैवी-सम्पत्तिवाले—भद्र मनुष्योंका हितकारी—आदित्यमण्डलावस्थित—शुद्ध ब्रह्मज्योति पूर्व दिशामें उदित हुआ है । उसकी कृपासे हम सौ वर्ष पर्यन्त देखें, सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहें, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक बोलें, सौ वर्ष तक दीनतासे रहित—प्रसन्न सुखी बने रहें, तथा सौ वर्षसे भी अधिक जीवित रहें । अर्थात् सौ वर्षसे भी अधिक हमारा स्वास्थ्यपूर्ण—दीनतारहित—सदा आनन्दी—जीवन बना रहे, हमारी—आंखोंकी—कानोंकी एवं वाणीकी पुष्टशक्ति अक्षुण्ण बनी रहे, यही प्रार्थना है )

## अंगन्यास

इसके बाद बैठकर या खडे—खडे ही अंगन्यास करे । नीचे लिखे—मन्त्रोंके एक—एकको पढता जाय और जिस न्यासमें जिस अंग का नाम हो, उस अंग पर हाथ लगाता जाय, तथा अन्तिम एकताली बजा कर चारों ओर चुटकियां बजा दे ।

**' ॐ हृदयाय नमः, ॐ भूः शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखायै वषट्, ॐ स्वः कवचाय हुम्, ॐ भूर्भुवः नेत्रत्रयाय**

वौषट्, ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट् ।'

## गायत्रीदेवीका आवाहन एवं ध्यान

अब गायत्री-देवीके आवाहनके लिए दाहिने हाथमें जल लेकर नीचे लिखे तीनों विनियोगोंको एक-एक पढकर पृथ्वीपर तीनवार जल छोड दे ।

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो-वर्णो जपे विनियोगः । त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्यु-ष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवाय्वादित्या देवता जपे विनियोगः। गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता देवता जपे विनियोगः ।

नीचे लिखा विनियोग पढकर पृथ्वी पर जल छोड दे ।

'तेजोऽसीति देवा ऋषयो गायत्री छन्दः शुक्रं दैवतं गायत्र्यावाहने विनियोगः ।'

नीचे लिखे मन्त्रोंसे विनय एवं श्रद्धापूर्वक गायत्री-देवीका आवाहन करे ।

'ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि । ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि नहि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत् ।

( हे गायत्री ! तुम तेजरूप हो-निर्मल प्रकाशरूप हो, अमृत-मोक्षरूप हो, चित्तवृत्तियोंके निरोधका प्रधान स्थान हो, देवोंकी प्रिय हो, देवपूजनका सर्वोत्तम-अभिभवरहित-साधनरूप हो । द्वितीय मन्त्रका

अर्थ गायत्री मीमांसामें किया है, वहां देखें )

नीचे लिखे मन्त्रको पढ कर इसके अनुसार गायत्रीदेवीका साकार ध्यान करे ।

**' ॐ श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा। श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च भूषिता ॥ आदित्यमण्डलस्था च ब्रह्मलोकगताऽथवा। अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा ॥ '**

( गायत्रीदेवी शुक्ल गौरवर्णकी है, उसने रेशमी वस्त्र धारण किये हैं, श्वेत चन्दन श्वेतपुष्प एवं श्वेत–मोती–हीरोंके आभूषणोंसे विभूषित है, यह सूर्यमण्डलमें या ब्रह्मलोकमें स्थित है, हाथमें रुद्राक्षकी माला है, पद्मासन लगाये बैठी है, ऐसी शुभ देनेवाली गायत्रीदेवीका ध्यान करे )

## गायत्री जपविधि

फिर गायत्रीके कमसे कम १०८ मन्त्रोंका जप करे, यदि कार्यवश इतना न हो सके तो (२८) अट्ठाईस मन्त्रोंका श्रद्धासे जप करे । प्रातःकाल एवं मध्याह्न के समय सूर्यके सामने खडा होकर या बैठकर और सायंकाल पश्चिमकी ओर मुख करके बैठ कर जप करना चाहिये । वैखरीवाणीसे जप करनेमें दशगुना फल, उपांशुसे ( ओठ हिले परन्तु दूसरा मनुष्य शब्द न सुन सके वह ) जप करनेमें सौ गुनाफल, तथा एकाग्रतापूर्वक मनमें मन्त्र जप करनेमें हजारगुना फल होता है । रुद्राक्षकी माला या तदभावमें तुलसीकी माला दाहिने हाथमें लेकर मालासहित हाथको वस्त्रसे या गोमुखीसे ढांपकर जप करना चाहिए।

## गायत्री-मन्त्र

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ।

नीचे लिखे मन्त्रको पढते हुए प्रदिक्षणा करे ।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणा पदे पदे ॥

नीचे लिखा मन्त्र पढ कर गायत्रीदेवीका विसर्जन करे ।

ॐ उत्तमे शिखरे जाते ! भूम्यां पर्वतमूर्धनि ।
मातस्तु वरदे ! देवि ! गच्छ देवि ! यथासुखम् ॥

( पृथ्वीपर-पर्वत-मस्तक-उत्तम-शिखरमें प्रकट हुई हे देवी वरदेनेवाली माता आनन्दपूर्वक जाइये )

नीचे लिखे वाक्य को पढकर आचमनीसे जल गिरावे-

अनेन यथाशक्ति प्रातः (मध्याह्न सायं) संध्योपासन-कर्मणा भगवान् श्री सूर्यनारायणः प्रीयतां न मम ।

अन्तमें हाथ जोडकर नीचे लिखा श्लोक पढकर विष्णुभगवानका ध्यान करे—

ॐ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या जपसन्ध्याक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ।

पश्चात् तीन बार

‘ ॐ विष्णवे नमः ॐ विष्णवे नमः ॐ विष्णवे नमः ’

उच्चारण करके संध्योपासन समाप्त करे ।

इति यजुर्वेदीयसंध्योपासनं समाप्तम् ।

# पुरुषसूक्त-देवार्चनम्

पुरुषसूक्तके मन्त्रोंके द्वारा प्रत्येक द्विजको शिव–विष्णु आदि–-देवोंका अर्चन ( पूजन ) अवश्य करना चाहिए। आसनपर पूर्वाभिमुख बैठकर जलपात्र, चन्दन, पुष्प, अक्षत, तुलसीदल–बिल्वदल, धूप, शंख, इत्यादि अपने दाहिने ओर तथा घंटा बायीं ओर रक्खे। देव–पूजाङ्गत्वेन आचमन एवं प्राणायाम करके एकाग्र चित्त होकर घृत–दीप प्रज्वलित करे। पश्चात् नीचे लिखे पुरुषसूक्तके मन्त्रोंको क्रमशः पढता हुआ शिव–विष्णु आदि देवोंका शालग्राम–नर्मदेश्वर या चित्रपट आदिके द्वारा श्रद्धापूर्वक पूजन प्रारम्भ करे।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिँ सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥×
इति भगवन्तं श्रीशिवं श्रीविष्णुं वा इष्टदेवमावाहयामि।÷

( हजार अर्थात् असंख्य शिरवाला, असंख्य नेत्रवाला, और असंख्य पादवाला–विश्वमूर्ति पुरुष हैं। वह सब तरफसे–बाहर भीतर पृथिव्युपलक्षित–समस्त विश्वको व्याप्त करता हुआ दश अंगुल उससे अधिक–स्व महिमामें स्थित है )

---

×शालग्राम, नर्मदेश्वर आदि बाणलिङ्ग और प्रतिष्ठा की हुई मूर्तियोंमें आवाहन न करे, केवल मन्त्र बोल कर पुष्प छोड देवे।

÷यह पुरुषसूक्त–शुक्ल यजुर्वेदका ३१वाँ अध्याय है। इसके मन्त्रोंका शुद्ध उच्चारण किसी योग्य–विद्वान्के द्वारा सीख लेना चाहिए।

**ॐ पुरुष एवेद॑सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।**
**उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥**
**इति भगवते आसनं समर्पयामि ।**

शालग्रामके नीचे तुलसीदल या नर्मदेश्वरके नीचे बिल्वदल रक्खे।

(जो कुछ हो चुका, अब है, और आगे होनेवाला है, वह सब त्रैकालिक विश्व एकमात्र पुरुष—परमात्माही है। यह अमृतत्वरूप—मोक्षका अधीश्वर है, एवं जो जीवसमुदाय अन्नके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता है, उसका भी यह अधीश्वर है )

**ॐ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः ।**
**पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥**
**इति पाद्यं समर्पयामि ।** आचमनी से जल छोडे ।

( इतनी यानी परिदृश्यमान समस्त विश्व तो इसकी महिमा है, और इस महिमा से पुरुष—परमात्मा अत्यधिक—महान् है। ये सम्पूर्ण भूत—प्राणी उसका एक पाद ( अंश ) है, और उसका अमृतरूप तीन पाद—स्वयंज्योति—आनन्द—पूर्ण स्वर्गमें है )

**ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।**
**ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥**
**इति अर्घ्यं समर्पयामि ।**

चन्दन, पुष्प, सफेद तिल मिश्रित—जल प्रदान करे ।

( पुरुष अमृतरूप तीन पादसे ऊर्ध्व—यानी सर्वोत्कृष्ट स्वस्वरूप में विद्यमान रहता है, उसका एक पाद यहां विश्वरूप हुआ है। उस एक पादसे नाना प्रकारके भोग्य और भोक्तारूपसे स्वयं ही विस्तारको

प्राप्त हुआ है )

ॐ ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥
इति आचमनीयं समर्पयामि । तीनवार जल छोडे ।

( उस आदिम पुरुष परमेश्वरसे ब्रह्माण्ड देहवाला विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ । और उस विराट्के ब्रह्माण्ड देहसे देवरूप पुरुष हुआ । वह उत्पन्न हो कर वृद्धिको प्राप्त हुआ पश्चात् भूमिको उत्पन्न किया और फिर पुर यानी शरीरोंको उत्पन्न किया )

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥
इति जलादिस्नानं समर्पयामि ।

( उस सर्वहुत यानी सर्वात्मा विश्व—लयाधिष्ठान—यज्ञरूप विष्णुसे पुरुषने जलबिन्दु, घृत, आदि हव्य पदार्थ सम्पादित किये । उससे वायुदेवतावाले—वन तथा ग्राममें रहनेवाले पशु उत्पन्न हुए )

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥
इति वस्त्राणि समर्पयामि ।

( उस सर्वहुत—यज्ञपुरुषसे ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए, उसीसे छन्द उत्पन्न हुए, और उसीसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ )

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥
इति यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

( उससे घोडे उत्पन्न हुए, जो ऊपर नीचे दोनों तरफ दांत-वाले हैं, उस पुरुषसे गौएं उत्पन्न हुईं और उससे बकरी एवं भेड उत्पन्न हुई, अश्वादि यह उपलक्षण है, अर्थात् सब पशु उत्पन्न हुए )

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

इति चन्दनं अक्षतांश्च समर्पयामि ।

( उस प्रथम उत्पन्न—यज्ञ पुरुषको मन्त्रसे पवित्र कर, देवता, साध्य एवं ऋषिगण मानस—यज्ञ सम्पादन करते हैं )

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥१०॥

इति तुलसीबिल्वदलपुष्पाणि समर्पयामि ।

( जिस विराट्—पुरुषको—कितनी प्रकारकी कल्पना करके—परमेश्वरने धारण किया, इसका मुख क्या है ? भुजाएँ क्या हैं ? ऊरू और पाद क्या कहलाते हैं ? )

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत ॥ ११ ॥

इति धूपमाघ्रापयामि ।

ब्राह्मण ( ज्ञानशक्ति ) इसका मुख हुआ, क्षत्रिय (बलशक्ति) उसने अपनी भुजाएँ कीं । जो वैश्य ( धनशक्ति ) है, वह उसकी ऊरू—जंघा है, और शूद्र ( सेवा सामर्थ्य ) पदोंसे निष्पन्न हुआ )

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

इति दीपं दर्शयामि ।

( विराट् भगवान् के मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, चक्षुओंसे सूर्य उत्पन्न हुआ, श्रोत्रसे वायु और प्राण उत्पन्न हुए और मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ )

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाꣳ अकल्पयन् ॥ १३॥

इति नैवेद्यं निवेदयामि ।

( नाभिसे अन्तरिक्ष हुआ, शिरमें स्वर्ग वर्तता है, पदोंसे पृथ्वीकी और श्रोत्रसे दिशा और लोकोंकी कल्पना किया )

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥

इति ऋतुफलानि समर्पयामि ।

( जब पुरुष और हविषसे देवताओंने यज्ञका विस्तार किया, तब वसन्त–ऋतु उसका घी हुआ, ग्रीष्म समिधा हुआ और शरद् ऋतु हवि हुआ )

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञन्तन्वाना अबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥ १५ ॥

इति ताम्बूलं पूगीफलं समर्पयामि ।

(सात सागर इस पुरुष-मेधयज्ञके परिधि हैं, और बारह कार्तिकादि मास, पांच ऋतु [ हेमन्त और शिशिरको मिलाकर पांच ऋतु कहीं है ] तीन लोक ये सब मिलकर [ तीन–सात ] इक्कीस समिध किये,

देवता जो यज्ञ करते हुए, उसमें उन्होंने विराट् पुरुषको पशु बना कर बांधा)

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।१६।

इति मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

( देवोंने यज्ञकेद्वारा यज्ञरूप विष्णुभगवान् का यजन किया, वे यज्ञ ही प्रथम मुख्य धर्म हुए। वे यज्ञानुष्ठाता यजमान निश्चयसे स्वर्गकी महिमाको प्राप्त होते हैं, जहां पुरातन साध्य देवता रहते हैं )

—अब इन उत्तर—नारायणके छः मन्त्रोंसे इष्टदेव भगवान्‌की स्तुति एवं ध्यान करे ।

ॐ अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥१७॥

( जलसे पृथिवीसे तथा विश्वकर्मा-सूर्यदेवसे या कालदेवसे अच्छी प्रकार पुष्ट हुए—रसके द्वारा प्रथम यह सब जगत् वर्तमान हुआ था। उस रसके रूपको धारण करता हुआ सूर्य प्रतिदिन उदित होता है। यज्ञकर्ता—मनुष्यका प्रथम यह देवत्वरूप मुख्य था )

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।१८।

( यह आत्मा पुरुष जो महान् स्वयंज्योतिः स्वरूप एवं अज्ञानान्धकारसे पर है, इसको मैं जानता हूँ, इसको जानकर ही अधिकारी मृत्यु—बंधका अतिक्रमण करता है, परम—पद—लाभके लिए उसके ज्ञान को छोडकर अन्य कोइ मार्ग नहीं है )

ॐ प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।

( प्रजापति—परमेश्वर पञ्चभूतोंके गर्भके भीतर वर्तमान रहता है, वह वस्तुतः अजन्मा हुआभी मायाके द्वारा बहुरूपोंसे प्रकट होता है, अविकृत—प्रज्ञावाले धीरजन ही उसके पारमार्थिक—सर्वाधिष्ठान-स्वरूपका अनुभव करते हैं, उसमें समस्त भुवन अवस्थित हैं )

ॐ यो देवेभ्य आतपति, यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

( वह परमात्मा देवों [ दैवीसम्पद्वाले—सज्जनों ] के लिए अपने स्वस्वरूपको प्रकट करता है, वह उन देवोंके समक्ष प्रकट रूपसे सदा सर्वत्र अवस्थित रहता है, वह हिरण्यगर्भादि—देवोंसे प्रथम विद्यमान था उस ब्रह्मके स्वयंज्योति-आनन्दके लिए मेरा नमस्कार है, अर्थात् मैं उसमें ही एकमात्र परिनिष्ठित होजाता हूँ )

ॐ रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥ २१ ॥

( देव [ ब्रह्मनिष्ठ--महात्मा ] प्रथम अपने हृदयमें ब्रह्मके आनन्दपूर्ण-भर्ग-ज्योतिका प्राकट्य करते हुए ही उसका मुमुक्षोंके प्रति प्रतिपादन करते हैं, जो कोई ब्रह्म होनेकी इच्छावाला—ब्राह्मण उनके द्वारा इस प्रकार जानता है, उसके वशमें सब देव या विषयद्योतक—इन्द्रियसमुदाय होजाते हैं )

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे, नक्षत्राणि, रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण
सर्वलोकं म इषाण ॥ २२ ॥

(हे परमात्मन्! श्री एवं लक्ष्मी [ अर्थात् पूर्णैश्वर्य एवं पूर्ण सौन्दर्य शक्ति ] तेरी पत्नियां हैं, यानी पत्नीवत् तेरे आधीन हैं, दिन एवं रात्रि तेरे पार्श्व हैं, अर्थात् अगल-बगलमें वर्तमान हैं, आकाशके नक्षत्र तेरा रूप है, द्यावा पृथ्वी तेरा विकासित मुख है। उस तेरे दिव्य स्वरूपके दर्शनकी इच्छा रखता हुआ मैं प्रार्थना करता हूं कि-तू मेरे कल्याणकी इच्छा कर, मेरे शोभन परलोक लाभकी इच्छा कर, मेरे समस्तलोकके सुख प्राप्ति की इच्छाकर, अर्थात् तेरी इच्छामात्रसे मेरा अभ्युदय एवं निःश्रेयस सिद्ध होगा, ऐसा मैं विश्वास रखता हूं)

इति देवार्चनं समाप्तम्।

## अन्तिम-निवेदन

कुछ धार्मिक-प्रेमी भक्तों के अनुरोध से यह **'सानुवाद-गायत्री-मीमांसा'** **'संध्योपासनम्'** एवं **'देवार्चनम्'** के साथ प्रकाशित हो रही है। इस से द्विज-वर्ग लाभ उठावें, संध्योपासनादि-शुभ कर्म में अग्रसर हों, लुप्त-संस्कारों को पुनर्जीवित करें। इस समयके क्षत्रियादि-द्विज, प्रायः यज्ञोपवीत आदि संस्कारों से रहित देखने में आते हैं, ब्राह्मण भी संध्योपासन आदि स्वधर्म-कर्म से प्रच्युत होकर पाश्चात्यशिक्षाके व्यामोह में लिप्त हुए देखे जाते हैं। अतः यह पुस्तिका द्विज वर्ग की स्वधर्म-कर्म में विशिष्ट जाग्रति कराने में सहायक हो, ऐसी भगवान् से प्रार्थना है। लेखक एवं प्रकाशक महोदय को भी यही अभिलाषा है। इस ग्रन्थ का प्रकाशक महोदय भी विशेष धन्यवाद के पात्र है-जिसने इस के छपाने में नाम का मोह छोड़कर अमूल्य-धर्मार्थ-वितरण के लिए द्रव्य प्रदान किया है। हरिः ॐ तत्सत्-

विले-पारला, संन्याश्रम } महेश्वरानन्द मण्डलेश्वर
बम्बई नं. २४ श्रावण वदी ४ सोमवार वि.सं. २००५

नाम का मोह छोड़कर अमूल्य–धर्मार्थ–वितरण के लिए द्रव्य प्रदान किया है । हरिः ॐ तत्सत्–

विले-पारला, संन्यासाश्रम
बम्बई नं. २४

महेश्वरानन्द मण्डलेश्वर
श्रावण वदी ४ सोमवार वि.सं. २००५